Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आग्नेय-शतकम्

स्वामी समर्पणानन्द सरस्वती

12
पं-उ

अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयं तन्मे राध्यताम्।
इदमहमनृतात् सत्यमुपैमि॥ —यजु० १.५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१४.२
३१
122807

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय
कृपया पुस्तक के ऊपर कोई निशान आदि
न लगायें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओ३म्

आग्नेय शतकम्

(ऋग्वेद के चुने हुए सौ मन्त्रों की व्याख्या)

Book Verified
122807

स्वामी समर्पणानन्द सरस्वती
विद्यामार्तण्ड पं० बुद्धदेव विद्यालंकार

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

प्रकाशक :
कुसुमलता आर्य प्रतिष्ठान
४/४२, सैं० ५, साहिबा
गाजियाबाद, (उ०प्र०

R 14.2,SAM-A
122807
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्पादक : विद्यामार्तण्ड स्वामी दीक्षानन्द सरस्वती

प्रकाशक : कुसुमलता आर्य प्रतिष्ठान
४/४२, सेक्टर-५, राजेन्द्र नगर,
साहिबाबाद-२०१ ००५
गाजियाबाद (उ०प्र०)
दूरभाष : ०५७५-४६२३०२६

© प्रकाशकाधीन

संस्करण : प्रथम, ई० सन् २०००
महाशिवरात्रि पर्व विक्रम संवत् २०५६

मूल्य : १२.०० रुपये

प्राप्ति-स्थान : १. समर्पण शोध संस्थान
४/४२, सेक्टर-५, राजेन्द्र नगर,
साहिबाबाद, गाजियाबाद (उ०प्र०)
२. विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द
४४०८, नई सड़क, दिल्ली-६

मुद्रक : भगवती लेज़र प्रिंट्स
नई दिल्ली-६५, दूरभाष : ६४१४३५९

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय-सूची

	विषय	पृ०सं०
१.	प्रकाशकीय	५
२.	जब दुर्दिन को सुदिन में बदला	५
३.	आर्य-प्रतिष्ठान की स्थापना	७
४.	आदेशपालन	८
५.	अनन्ता वै अग्नयः	१२
६.	अग्नि ही अमर है	१४
७.	मनुष्य-शरीर में अनन्त अग्नियाँ	१५
८.	आहवनीयाग्नि क़ा स्थान मुख	१६
९.	गार्हपत्याग्नि का स्थान उदर	१६
१०.	दक्षिणाग्नि का स्थान हृदय	१७
११.	प्रयुज्, मनस्, तपस्, पूषन्	१७
१२.	वामन से विष्णु [अधि-विद्य]	१८
१३.	सविता का ब्रह्मचारी	१९
१४.	अग्नि का एकत्रीकरण	२०
१५.	अग्निरेकपाद्	२३
१६.	अग्नि के दो रूप	२४
१७.	एकाक्षर की एकपाद् है	२५
१८.	अथाध्यात्मम्	२८

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय	पृ०सं०
१९. अथाधिदैवम्	२८
२०. अथाधिभूतम्	२८
२१. अथाधिप्रजम्	२९
२२. अथाधिविद्यम्	२९
२३. अथाधिराष्ट्रम्	२९
२४. अथाधियज्ञम्	२९
२५. अथाधि संवत्सरम्	३१
२६. आग्नेय शतकम्	३२
२७. मन्त्रानुक्रमणिका	७१

—:o:—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकाशकीय

बालक का जन्म होने पर जातकर्म संस्कार किया जाता है। संस्कार की समाप्ति पर आमंत्रित बन्धु-बान्धव, इष्ट मित्र और विद्वज्जन नवजात शिशु को अधोलिखित मन्त्र द्वारा आशीर्वाद देते हैं—"इन्द्र श्रेष्ठाणि द्रविणानि धेहि....." अन्त में कहते हैं—"सुदिनत्व-मह्नाम्[१]" तेरा हर दिन सुदिन बीते। आगन्तुक महानुभाव भले ही उक्त मंत्र बोलकर आशीर्वाद न देते हों, परन्तु उनकी मनोभावना की अभिव्यक्ति लोकभाषा में इसी प्रकार होती है। मेरे जन्म पर आगन्तुक बन्धुओं ने यही आशीर्वाद दिया होगा—तेरा दिन सुदिन बीते। मैं अपनी ८३ वर्ष की लम्बी आयु पर जब दृष्टिपात करता हूँ तो लगता है कि तेरा दिन-दिन सुदिन ही बीता है।

जब दुर्दिन को सुदिन में बदला

यह आवश्यक नहीं है कि बालक का हर दिन सुदिन ही बीते। दुर्दिन भी देखने पड़ते हैं। हर दिन के दो भाग हैं—जहाँ दिन है वहाँ रात भी है, जहाँ शुक्ल पक्ष है वहाँ कृष्ण पक्ष भी है, जहाँ पूर्णिमा है वहाँ अमावास्या भी है। बुद्धिमान् व्यक्ति का काम है कि दुर्दिन को सुदिन में बदल ले। मेरे जीवन में वह दिन

---

१. ऋ० २/२१/६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दुर्दिन था कि जिस दिन गुरुवर्य पं० बुद्धदेव (स्वामी समर्पणानन्द जी) का वियोग हुआ। उस अवसर पर मन में विचार आया कि क्यों न इसे सुदिन में बदल लूँ! बस, तत्काल निर्णय लिया और गुरुदेव के नाम पर **'समर्पण शोध संस्थान'** की स्थापना कर दी। दिल खोलकर कार्य किया। उनके द्वारा लिखित साहित्य का अक्षर-अक्षर प्रकाशित कर दिया। संस्थान के निर्धारित उद्देश्यानुसार अन्य विद्वानों द्वारा लिखित एवं सम्पादित साहित्य भी प्रकाशित किया। विशेषकर विद्वद्वर्य श्री पं० रामनाथ जी द्वारा लिखित एवं सम्पादित सामवेद—संस्कृत-हिन्दी एवं हिन्दी-भाष्य संस्थान की ओर से प्रकाशित हुआ और संस्थान के लिए अत्यन्त हर्ष का विषय वह दिन हुआ कि जिस दिन सामवेद के भाष्य पर मान्य लेखक को राष्ट्रपति-पुरस्कार मिला। मेरे लिए इससे बड़ा सुदिन और क्या हो सकता था! अस्तु, इस प्रकार लेखन और प्रकाशन के क्षेत्र में एक ऐसा मानदण्ड स्थापित किया कि जिसे कोई सहज लाँघ न सके। इस सारे कार्य को देखकर गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी ने अपनी सर्वोच्च **विद्यामार्तण्ड** की मानद उपाधि से अलंकृत किया। मैंने मन ही मन सोचा कि तुम अब ऋण-मुक्त हुए। तुमने संस्थान के माध्यम से छोटी-बड़ी ५० पुस्तकें छाप ली हैं। अब तो तुम्हारे मस्तिष्क में जो भी विचार उठते हैं उन्हें लेख-बद्ध कर दो। आयु का आग्रह है कि अब दौड़-धूप बंद करके संन्यास का सच्चा आनन्द लो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आर्य-प्रतिष्ठान की स्थापना

मैं सोच ही रहा था कि तुम त्रिविध-ऋणों से मुक्त हो गए, परन्तु प्रभु को कुछ और ही स्वीकार था—**मेरे मन कछु और है, विधना के कछु और!** एक दुर्दिन और देखना था। देखते ही देखते २५ फरवरी १९९७ को एक पंछी हाथों में से उड़ गया, जिसे बड़े चाव से और भाव से पाला था, पोसा था, बड़ा किया था और अपनी समस्त वैचारिक और बौद्धिक निधि उसे प्रदान की थी, और आशा बाँधी थी कि मेरे पीछे मेरे छूटे हुए कार्यों को पुत्री कुसुम सम्भाल लेगी। होनी बलवान् निकली! अस्तु, विचार आया कि क्यों न इस दुर्दिन को भी सुदिन में बदल लूँ! तत्काल निर्णय लिया कि पुत्री कुसुम के नाम पर भी एक प्रतिष्ठान की स्थापना कर दी। नाम रखा **कुसुमलता आर्य प्रतिष्ठान**। उसके उद्देश्य निश्चित किये उनमें से एक उद्देश्य यह भी रखा कि वेद-विदुषी महिलाओं द्वारा वेद एवं वैदिक वाङ्मय पर किये शोध-प्रबन्धों को प्रकाशित करवाना। मेरे पास प्रकाशनार्थ कई शोध-प्रबन्ध आए हुए थे। इनमें दो शोध-प्रबन्ध उपयोगी लगे—**दयानन्द के वेदभाष्य के परिप्रेक्ष्य में अग्नि देवता** एवं **इन्द्र देवता का अध्ययन**। मैंने यह उचित समझा कि इन दोनों शोध-प्रबन्धों को प्रकाशित करवा दिया जाए। उसी के परिणामस्वरूप अग्निदेवता विषयक प्रकाशित ग्रन्थ विज्ञजनों के हाथ में है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदेशपालन

गुरुवर्य पं० बुद्धदेव विद्यालंकार ने लिखा—यह आवश्यक है कि पहले सम्पूर्ण वैदिक देवताओं पर जिनकी संख्या १९० है, विज्ञाताश्रयवाद के आधार पर अनुसंधान हो। जब तक सोम, मरुत्, अग्नि, त्वष्टा, अश्विनौ, इन्द्र आदि देवता क्या हैं, यह निर्णय न हो जाए, तब तक शतपथ ब्राह्मण की यज्ञ-प्रक्रिया समझ नहीं आ सकती। गुरुवर्य ने सोम और मरुत् दो देवताओं पर लघु ग्रंथ लिखकर एक प्रकार से देवता तत्व जानने के लिए इंगित किया है एवं अपनी अंतिम रचना ऋग्वेद मण्डल मणि सूत्र में पर्याप्त देवताओं पर प्रकाश डाला है। इसी संकेत के आधार पर हमने दो प्रसिद्ध देवताओं पर हुए शोध-प्रबन्धों को प्रकाशित करना उचित समझा। वे दोनों शोधकर्त्री विदुषी महिलाएँ वर्त्तमान में श्रीमद्दयानन्द गुरुकुल महाविद्यालय चोटीपुरा का संचालन कर रही हैं। एक आचार्या पद को अलंकृत किये हैं तो दूसरी उपाचार्या पद को—आचार्या पद पर पुत्री सुमेधा एवं उपाचार्या पद पर पुत्री सुकामा। पुत्री सुमेधा के शोध-प्रबन्ध का विषय है 'महर्षि दयानन्द के वेदभाष्य के परिप्रेक्ष्य में अग्नि देवता का अध्ययन' और पुत्री सुकामा के शोध-प्रबन्ध का विषय है 'इन्द्र देवता का अध्ययन'।

प्रत्येक स्वाध्यायशील व्यक्ति इस बात से भलीभाँति परिचित है कि ऋग्वेद में अग्नि और इन्द्र देवता से संबद्ध मंत्रों की संख्या सबसे अधिक है। दोनों देवता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक-दूसरे के पूरक हैं, एक-दूसरे के सहयोगी हैं। यह सब-कुछ होते हुए भी अग्नि देवता का स्थान सर्वप्रथम है। अग्नि नाम ही इस बात का संकेत है कि वह अग्रणी है। वह आगे रहता है और सबको आगे ले चलता है। यही कारण है कि ऋग्वेद का आरम्भ भी अग्नि-सूक्तों से हुआ है। इतना ही नहीं, प्रथम सूक्त के प्रथम मंत्र का प्रथम पद अग्नि ही है। यही क्यों? ऋग्वेद का प्राप्तकर्त्ता ऋषि भी अग्नि है जब पिण्ड-पुरुष में ब्रह्माण्ड-पुरुष की देवता अवतरित हुई तो उनमें अग्नि ही अग्रणी था, अग्नि ही मुख्य था। ऐतरेय उपनिषद् २/४ में लिखा है "**अग्निर्वाग् भूत्वा मुखं प्राविशत्**[1]"। यह बात स्वाभाविक थी, क्योंकि पुरुषसूक्त में कहा गया है "**मुखादग्निरजायत**[2]" अर्थात् ब्रह्म के मुख से अग्नि का जन्म हुआ और वही अग्नि वाक् बनकर समाज-पुरुष के मुख ब्राह्मण में आ बैठा। सृष्टि के आरम्भ में भी अग्नि ऋषि ऋग्वेद बनकर अन्य ऋषियों के मुख में आ बैठा और तभी कहा कि— **अग्निः पूर्वेभिर् ऋषिभिरीड्यो नूतनैरुत। स देवान्** (इन्द्रादि देवताओं को) **इह** (इस धरती पर) **आ वक्षति**[3] (उतार लाता है)। यही कारण है कि प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्त में प्रत्येक सद्गृहस्थ पुकार उठता है "**प्रातरग्निं प्रातरिन्द्रं**

---

१. ऐ० ३०.१.२.४
२. ऋ० १०.९०.१३
३. ऋ० १.१.२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हवामहे प्रातर्मित्रा वरुणा प्रातरश्विना। प्रातर्भगं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं प्रातस्सोममुत रुद्रं-हुवेम[1]। यही क्यों? नहा-धोकर संध्या में निमग्न व्यक्ति मनसापरिक्रमा मंत्रों से अपनी दशा पर विचार करने लगा तो **प्राची**—आगे बढ़ने की दिशा में **अग्नि** को और **दक्षिणा**—समृद्धि की अवस्था के लिए **इन्द्र** को अधिपति बना बैठा। अग्नि अधिपति ही नहीं वह तो पुरोहित भी है, आदर्श (Model) भी है। हर व्यक्ति उसकी आकृति को अपने में उतारना चाहता है। उसकी योग्यता का क्या कहना! विभिन्न स्वभाव के लोगों से काम लेना जानता है, ऋत्विग् जो ठहरा! **ऋतुना ऋतुना यजति इति ऋत्विजः**—ऋतु-ऋतु से यजन करता है, ग्रीष्म से भी, शरद् से भी, वर्षा से भी, वसन्त से भी। वही है जो वसन्त को आज्य, ग्रीष्म को इध्म, शरद् को हवि बनाता है। संगठन के सब व्यक्तियों को बुलाता है, **होता** जो ठहरा! यह योग्यता उसमें इसलिए है कि वह अतिशय रत्नों को धारण करने वाला है। इसी विश्वास पर तो ऋग्वेद की समाप्ति पर परिवार, समाज अथवा राष्ट्र अपने इळस्पद अग्नि को स्मरण कर कह उठता है **सं समिद्युवसे वृषन्नग्ने विश्वान्यर्य आ, इळस्पदे समध्यिसे स नो वसून्या भर**[2]। इस प्रार्थना पर ही तो अग्निदेव ने कहना आरम्भ किया "**संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो**

---

१. य० ३४.३४

२. ऋ० १०.१९१.१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनांसि जानताम्[१]। अग्निदेव की अनन्त योग्यताएँ हैं—उसमें ताप है, प्रकाश है, समर्पण है और है सबको जोड़ने की शक्ति। इसीलिए उस सामान्य ईंधन का नाम समिधा पड़ गया। ऋचा में कहा भी है **सम्यञ्चोऽग्निं सपर्यतारानाभिमिवाभितः**[२]—यही वह नाभि है जिसमें समिधाएँ अरों की भाँति सब ओर से जुड़ जाती हैं। इसी कारण वह अग्नि अपने अनुयायियों से कहता है—**समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः। समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति।** पाठक **वः** की मुहारानी का आनन्द लें। **वः** की मुहारनी का क्रम यहीं तक ही नहीं रहा, आगे भी चला और यजुर्वेद के प्रथम मंत्र में भी कहा—**देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मणे। मा वः स्तेन ईशत**[३]। अग्नि ऋषि ने कहा "**वायवस्थ**" अर्थात् वायु देवता के माध्यम से प्राप्त यजुर्वेद के आदेश का पालन करो। मैं तो सविता देव से, प्रेरणा के देवता से, यही कहूँगा कि वह सविता देव तुम्हें श्रेष्ठतम कर्म के लिए प्रेरित करे। श्रेष्ठतम कर्म एकमात्र यज्ञ है और यज्ञों का मुख अग्निहोत्र है। याज्ञवल्क्य कह गए हैं—**एतद्वै यज्ञानां मुखं यदग्निहोत्रम्**[४]। यह तुम जानते ही हो कि अग्निहोत्र पञ्चमहायज्ञों में परिगणित

---

१. ऋ० १०/१९१/२
२. ऋ० १/१९१/४
३. य० १/१
४. शत० १४/३/१,२९

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है, जो तुम्हारे लिए नित्यकर्म है। उसमें भी सर्वप्रथम मुझे ही आधान करना होगा, मैं ही सब देवों में अमृत हूँ। ऐ यजमान! मेरा ही आचमन करना होगा, मेरा ही बिछौना (उपस्तरण) मेरा ही ओढ़ना (अपिधान) बनाना होगा, तब मैं सत्य, यश, और श्री रूप में अमर बनकर तुझमें निवास करूँगा। जिस प्रकार ऋग्वेद के अन्त में मुझसे प्रार्थना की थी उसी प्रकार यजुर्वेद के अन्त में भी मुझसे ही प्रार्थना करना—"**अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्**[१]। इतना ही नहीं, सामवेद के प्रथम सूक्त के प्रथम मन्त्र द्वारा प्रार्थना करना—**अग्न आयाहि वीतये। गृणानो हव्यदातये। नि होता सत्सि बर्हिषि**[२]॥

अनन्ता वै अग्नयः

यह अग्नि-नाम भौतिक पदार्थ के लिए ऐसा रूढ़ हो गया है कि बहुत कठिनाई से समझाया जा सकता है कि अग्नि का अर्थ भौतिक वह्नि के अतिरिक्त कुछ और भी होता है। आचार्य यास्क 'निरुक्त' में इस शब्द का निर्वचन करते हुए लिखते हैं—'**अग्निः कस्मात्? अग्रणीर्भवतीति**'—अग्नि को अग्नि इसलिए कहते हैं कि वह आगे ले चलता है, हमें ध्येय तक पहुँचा देता है।

अँधेरे में हमारा पथ-प्रदर्शक कौन होता है?—यही अग्नि ही तो! यही वह्नि (टॉर्च) ही तो—**वहति**

---

१. य० ४०.१६

२. साम० १.१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

च नयति च। अन्धे अपनी लाठी के सहारे या फिर किसी छठी इन्द्रिय की बदौलत ही ध्येय तक पहुँच जाते हैं। यह लाठी, यह बुद्धि उनकी अग्नि हुई। बूढ़े की लाठी होता है उसका पोता। वेद में अग्नि का एक रूप शिशु भी है। प्रज्ञाचक्षुजनों की आत्माग्नि प्रबल होती है। अबोध बालक का नयन उसका आचार्य होता है, उसका कुलगुरु होता है, कुलपति होता है। प्रजा का पथ-प्रदर्शक अग्नि-प्रजापति, राष्ट्रपति, सम्राट् और परिव्राट् संन्यासी होता है। इसी प्रकार अन्यान्य क्षेत्रों में सेनापति, राजदूत, निशापति और दिवापति की स्थिति होती है। स्वानुभव हमें कितनी ही अग्नियों को इस छोटे-से पिण्ड में प्रत्यक्ष करा देता है। 'शब्दवेधी' शब्द से दिशा का ज्ञान पा लेता है—'**अनन्ता वै अग्नयः**'।

प्रत्येक अग्नि के दो छोर होते हैं—एक चक्षु और दूसरा लक्ष्य। अग्नि यदि इन दोनों छोरों तक व्यापक न बन जाए, तो कोई भी नीयमान अपने उद्दिष्ट लक्ष्य तक कभी भी पहुँच न पाय। अग्नि के इस व्यापक रूप को यदि हम आत्—इति—अ=आदित्य संज्ञा दे दें तो कोई आपत्ति न होगी। वस्तुतः अग्नि प्रकाश का एक जादू ही तो है! आदित्य की प्रकाश-रश्मियाँ हमारी नयन-रश्मियों के सम्पर्क में आकर दृश्य-जगत् को प्रत्यक्ष करा देती हैं। प्रकाश, ताप और समर्पण अग्नि के धर्म हैं। धर्म अपने धर्मी से जुदा नहीं रह सकता। इन तीनों में से एक के भी अभाव में अग्नि का अस्तित्व समाप्त हो जायगा। प्रकाश और ताप इसके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समर्पण पर निर्भर हैं। इसके समर्पण का भी क्या कमाल है कि अन्तिम क्षण तक अपने (समिधा) शरीर का अणु-अणु कटाकर भी प्रकाश और ताप की रक्षा करता है। अपने शरीर को भस्म बनाकर भी नीयमान को लक्ष्य तक पहुँचाने की चिन्ता करता है। बस, यही तीनों तत्त्व प्रत्येक अग्रणी (अग्नि) में होने अनिवार्य हैं। इस सारे विवेचन से यह स्पष्ट हो गया कि 'अग्नि' पद केवल आग का ही वाचक नहीं, अपितु प्रत्येक उस व्यक्ति का वाचक है जो अपने नीयमान को उसके लक्ष्य तक पहुँचा रहा है। इस स्थापना को प्रमाणित करने के लिए शतपथ का एक कथानक उपस्थित करते हैं—

अग्नि ही अमर है

कहते हैं कि देव और असुर दोनों में बहुत स्पर्धा चली। वे दोनों अनात्मज्ञ थे, मरणधर्मा थे। अनात्मज्ञ होना ही मरणधर्मा होना है। उन देव और असुर दोनों में अग्नि ही अमृत था। उसी के आश्रित वे अमृतत्व का उपभोग कर रहे थे। सो जो इसे मार देता है, वह भी स्वयं मर जाता है। एक समय आया कि देव अत्यल्प संख्या में रह गए। उन्होंने सोचा कि अर्चना और श्रम करते हुए अपने प्रतिद्वन्द्वी असुरों का पराभव करें। उन्हें सूझा कि क्यों न इस अग्नि को अपने अन्तरात्मा में आधान करके स्वयं अमर हो जायँ और शत्रुओं को पराजित कर दें। उनमें से कुछ बोले कि यह अग्नि तो देव और असुर दोनों में ही तुल्य है। यदि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहीं असुरों ने भी इसे आधान कर लिया तो कौन-किसको अभिभव कर सकेगा? देव बोले कि असुरों को इस रहस्य का ज्ञान ही नहीं कि किसी अग्नि को अन्तरात्मा में भी आधान किया जाता है। यदि विश्वास न हो तो उनसे चलकर पूछ लें। यही किया गया। ज्यों ही असुरों से जाकर पूछा कि तुम अग्नि का क्या करोगे? असुर बोले कि क्या करेंगे? उसे काबू में लाकर कहेंगे कि लो लकड़ी जलाओ, चावल पकाओ, मांस पकाओ। असुरों ने जिस अग्नि का आधान किया था, उससे मनुष्य अपना भोजन पकाते हैं। देवों को इस रहस्य का पता लगना था कि उन्होंने अग्नि को अन्तरात्मा में आधान कर लिया; अपने प्रतिद्वन्द्वी असुरों को दबा लिया। बस, जो भी इस रहस्य को जानकर अमृत-अग्नि को अपने अन्तरात्मा में आहित कर लेता है, वह अमर हो जाता है। इसके सिवाय अमर होने का अन्य उपाय नहीं। मर्त्य से अमृत होने का यही मार्ग है। आहिताग्नि और अनाहिताग्नि के इस मौलिक भेद को अभी आधुनिक विज्ञान ने भी स्वगत करना है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो गया कि भोजन पकानेवाली आग चूल्हे में आहित की जाती है, जबकि असुरों का अभिभव करनेवाली अमृत-अग्नि हृदय-कुण्ड में आहित की जाती है। बस, उसी का नाम श्रद्धा, दीक्षा, संकल्प अथवा व्रताग्नि है।

मनुष्य-शरीर में अनन्त अग्नियाँ

इस शरीर को शरीर इसलिए कहते हैं कि इसमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अग्नियाँ आश्रय पाती हैं—'**अग्नयो ह्यत्र श्रियन्ते**'—**ज्ञानाग्नि, दर्शनाग्नि, कोष्ठाग्नि।** मनुष्य-द्वारा खाए, पिए, चूसे हुए पदार्थों को पचाने वाली शक्ति का नाम **कोष्ठाग्नि** है। रूपों का दर्शन करानेवाली शक्ति का नाम **दर्शनाग्नि** है। शुभाशुभ कर्मों का लाभ करानेवाली शक्ति का नाम **ज्ञानाग्नि** है। इसी प्रकार **आहवनीयाग्नि, गार्हपत्याग्नि, दक्षिणाग्नि,** नामक तीन-तीन अग्नियाँ और भी आश्रय पाए हुए हैं, जिनके स्थान क्रमशः मुख, उदर और हृदय हैं—'**मुखे आहवनीयम्, उदरे गार्हपत्यो, हृदि दक्षिणाग्निः।**'

आहवनीयाग्नि का स्थान मुख

प्रथम स्थान मुख का है जो आहवनीय अग्नि का आगार है, जहाँ रस का दानादान होता है—रसना रस लेती भी है और पदार्थ में लार-रूप रस देती भी है। इन्द्रियदेवों का 'हविर्धान' हमारा मुख ही तो है! मुखाग्नि हव्यवाहन है, देवदूत है, इन्द्रिय का मुख है, सुख-दुःख की मूर्त्तवाणी है। ऋग्वेद के प्रथम सूक्त में उसे 'कवि' कहा गया है, सो यूँ ही नहीं।

गार्हपत्याग्नि का स्थान उदर

उदर में जठराग्नि अथवा गार्हपत्याग्नि का निवास है। उसे गार्हपत्याग्नि 'कविर् गृहपतिर्' समझना चाहिए। जिस जगह भोज्य, पेय, लेह्य और चोष्य पदार्थ ग्रहण किये जाते हैं, वह गार्हपत्यागार है और उस वेदि में सतत जल रही अग्नि गार्हपत्याग्नि है। सभी इन्द्रियाँ अपना भाग रसनेन्द्रिय द्वारा जठराग्नि तक पहुँचाती हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यही कुछ रूपक-दृष्टि से 'देवों' इन्द्रियों द्वारा गार्हपत्याग्नि में हवन है, हविदान है।

दक्षिणाग्नि का स्थान हृदय

दक्षिणाग्नि का निवास हृदय में है। आहवनीय और गार्हपत्याग्नि को समृद्ध करना इसी के हाथ में है। इसी को हम व्रताग्नि, दीक्षाग्नि भी कह सकते हैं, क्योंकि दक्षिणा के, समृद्धि के पूर्वरूप दो ही तो होते हैं—व्रत और दीक्षा—'**दीक्षयाप्नोति दक्षिणाम्**[1]' तथा व्रत, दीक्षा और दक्षिणा का आधार होता है 'हृदय'।

पति-पत्नी के हृदय में आहवन, परस्परार्पण की भावना का उदय, बिना दक्षिणाग्नि के कैसे हो सकता है?—'**मम व्रते ते हृदयं दधामि**[2]' यह व्रत, आहवनीय ही गार्हपत्य का आधार है। कक्षान्तर में यह बात गुरु-शिष्य में घटती है।

प्रयुज्, मनस्, तपस्, पूषन्

दो मित्रों, दो राष्ट्रों में भी वही परस्पर भावना ही है, जो हवि के दानादान द्वारा जनजीवन को वहन किये है। हमारे शरीर में इन तीन अग्नियों के अतिरिक्त—प्रयुज्, मनस्, तपस् और पूषन् आदि कितनी ही अग्नियाँ आश्रय पाई हुई हैं।

कभी-कभी हम आकूति, अनुमान के भरोसे कदम उठा लेते हैं, जो हमें झकझोरकर कह रहा होता है कि

---

१. य० १९.३०

२. आश्व० सू० १.२१.७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस काम को कर डालो, रुको नहीं! यह प्रयुज्य अग्नि है—**'आकूत्यै प्रयुजेऽग्नये स्वाहा'**[१]।

जहाँ विचारों का संगम होता है, उसका नाम मेधा है। जिसके बल से मानसिक विचार मेधा का रूप धारण कर लेते हैं, उसे ही मनस् अग्नि कहते हैं। आकूति का जन्म मेधा से होता है और मेधा का जन्म दीक्षा से होता है और इस दीक्षा को, दृढ़ निश्चय को, बल मिलता है तपस् अग्नि द्वारा। द्वन्द्वसहन की शक्ति अन्तर्बल द्वारा प्राप्त होती है, उसी अन्तर्बल का नाम सरस्वती है। सरस्वती का प्रवाह बिना पूषन् अग्नि के असम्भव है।

आकूति के लिए मेधा की आवश्यकता है, मेधा के लिए दीक्षा की आवश्यकता है और दीक्षा के लिए सरस्वती की, और इन सभी को क्रमशः प्रदीप्त रखनेवाली प्रयुज्, मनस्, तपस् और पूषन् अग्नियों की आवश्यकता है। ये सभी अग्नियाँ शरीर में आश्रय पाती हैं।

वामन से विष्णु [अधि-विद्य]

राष्ट्र का गर्भभूत बालक आचार्य के पास उपनयनार्थ समित्पाणि होकर आया, तो आचार्य ने पूछा—**कस्य ब्रह्मचारी असि?** इस पर बालक ने सरलता से उत्तर दिया—**भवतः** (आपका)। तब आचार्य ने समझाते हुए कहा कि तू **'इन्द्रस्य ब्रह्मचारी असि'**—इन्द्र—ऐश्वर्यवान् परमात्मदेव का, अथवा तत्प्रतिनिधिभूत राष्ट्रपति का

---

१. य० ४.७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्रह्मचारी है और तेरा—**अग्निर् आचार्यस्तव अहमाचार्यस्तव**[१]—तुझे तेरे लक्ष्य तक पहुँचाने के निमित्त परमाग्रणी भगवान् अथवा तत्प्रतिनिधिभूत सब अग्नियों का एकोपलक्षणभूत तेरा अपना संकल्प ही तेरा प्रथम आचार्य है और तेरे संकल्प को मूर्त्तरूप देने का साधनमात्र होने से मैं आचार्य हूँ।

सविता का ब्रह्मचारी

इससे पूर्व सूर्यावलोकन-विधि में आचार्य ब्रह्मचारी को सवितादेव के सामने खड़ा कर कहता है—'**देव सवितर् एष ते ब्रह्मचारी तं गोपाय स मा मृत**[२]'—हे देवसवितः! सर्वप्रथम यह बालक तेरा ब्रह्मचारी है, यह धरोहर तेरे सुपुर्द है, देखना रक्षा करना! यह मरे नहीं! फिर सूर्य की ओर ब्रह्मचारी को इंगित करते हुए '**तच्चक्षुर्देवहितम्**' मन्त्र के साथ उसे दिव्यचक्षु की ओर देखने को कहा जाता है कि देखो, सूर्य वह परमशक्ति है जिसकी परिक्रमा में यह ग्रह-मण्डल एक व्यवस्था में चल रहा है।

यह हमारा गुरुकुल भी एक छोटा-सा सौरमण्डल है, आचार्य जिसका सविता है और ब्रह्मचारीवर्ग जिसके ग्रहोपग्रह। 'ब्रह्म' की चर्या, परिक्रमा, तुम्हारा लक्ष्य है। आचार्य-अग्नि की परिक्रमा उसमें तुम्हारा प्रथम पग है, मात्र एक अनुकृति है। इस नाट्यशाला में की गई

---

१. पार० २.२.१९

२. आश्व० १.२०.५, ६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिक्रमा तो मात्र एक प्रतीक है—इस बात का बोध कराने के लिए कि तू ब्रह्म की तलाश में निकला है—उस राह में कुछेक कदमों तक मैं (तेरा आचार्य) तेरा अग्रणी हूँ। कदाचित् मैं भी पथभ्रष्ट हो सकता हूँ, किन्तु तू अपने हृदय-कुण्ड में जल रही श्रद्धाग्नि को आदर्श मानना, अथवा सौरमण्डल में उदित उस सूर्य को। ये दो आदित्य तुझ आदित्य ब्रह्मचारी के परमादर्श होंगे, नित्य आचार्य होंगे—कभी न बुझनेवाले दो दीपक होंगे। तेरे हृदय की अग्नि वामन है, ब्रह्माण्ड में उदित सूर्य वा तद्गुणयुक्त दयानन्द-सरीखा कोई आदित्य-ब्रह्मचारी हमारे-तुम्हारे लिए विष्णु है। हृदय में प्रदीप्त श्रद्धाग्नि तेरे मस्तिष्क पर, तेरी ज्ञानेन्द्रियों पर, तेरी वाणी पर छा जाए तो तुझे कुछ कहना होगा कि मेरे द्युलोक को श्रद्धाग्नि ने नाप लिया। मेरी आँखें अब वही-कुछ देखती हैं, जोकि मेरा संकल्प है। कान वही-कुछ सुनते हैं, जो मेरा संकल्प है। मेरी वाणी वही-कुछ उच्चारण करती है, जो मेरा संकल्प है। हाथ वही-कुछ करते हैं, जो मेरा संकल्प है। और तो और, मेरे हृदय की धड़कन से मेरा संकल्प ही मुखरित होता है। मेरे कदम-कदम से मेरा संकल्प ही प्रकट होता है। मेरी सारी दुनिया पर 'संकल्प' ही आदित्य बनकर छा गया है।

अग्नि का एकत्रीकरण

वेदारम्भ की वेला में आचार्य ब्रह्मचारी से कहता है कि आओ, वेदिस्थ अग्नि को '**अग्ने सुश्रवः सुश्रवसं**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मा कुरु[२]' मंत्र द्वारा एकत्र करो, जिसका एकमात्र आशय यह होता है कि ब्रह्मचारी अपने सभी विचार-स्फुल्लिंगों को—जो उसकी हृदय-वेदि में फूट रहे होते हैं, बिखरे पड़े होते हैं, उनमें एकरूपता देने के लिए संहत करना आरम्भ कर दे। उन्हें एक अजस्र, किन्तु मर्यादित स्रोतश्रवस् नहीं, सुश्रवस् बनने की साधना इसी क्षण से आरम्भ कर दे। तत्पश्चात् हृदयस्थ अग्नि को लक्षित कर कहलवाते हैं **'ओं यथा त्वमग्ने देवानां यज्ञस्य निधिपा असि[३]'** जिस प्रकार यज्ञकुण्ड में प्रदीप्त अग्ने! तू देवों के भौतिक यज्ञरूप निधि का रक्षक है, वैसे ही मैं अपने हृदय-कुण्ड में प्रदीप्त श्रद्धाग्नि की कृपा से **'मनुष्याणां वेदस्य निधिपा भूयासम्[३]'** मनुष्यों के ज्ञाननिधि वेद का रक्षक बन सकूँ। इसके अनन्तर यज्ञ-कुण्ड की प्रदक्षिणा होती है, मानो हृदय-कुण्ड में जल रही व्रताग्नि की परिक्रमा होती हो।

तत्पश्चात् ब्रह्मचारी पूर्वाभिमुख होकर वेदि की अग्नि में दोनों हाथों को तपाकर उन्हें सात मन्त्रों से सात बार मुँह पर फेरता है। तू ही मेरी अंगरक्षक है, मुझे वर्चस् और आयु देनेवाली है। स्पष्ट ही सम्मुख यज्ञ-कुण्ड में प्रदीप्त अग्नि आत्म-अग्नि की त्रिधा प्रतीक है—'तनूपा' जठराग्नि की, गार्हपत्याग्नि की; 'आयुर्दा' प्राणाग्नि की, आहवनीयाग्नि की; और 'वर्चोदा' संकल्पाग्नि की, दक्षिणाग्नि की। हाथों को तपाना अपने कृत और फल को संकल्प की आँच देना है। जिस

१-३. पारस्कर गृ० सूत्र २.४.२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुरुषार्थ पर ब्रह्मचारी के संकल्प की छाप न हो, वह फलोपलब्धि नहीं कराता और जिस फल पर ब्रह्मचारी के संकल्प की मुहर न हो, वह फल लेने योग्य नहीं। संकल्प की आँच से तप्त, कृत और विजय ही, पुरुषार्थ और फल, वर्चस् अर्थात् दीप्ति और तेज दे सकते हैं। उससे भिन्न कृत और फल ही इनके हरनेवाले हो जाते हैं। इसलिए ब्रह्मचारी अपने दोनों हाथों को—कृत और फल को—**'कृतं मे दक्षिणे हस्ते जयो मे सव्य आहितः**[१]' अग्नि पर तपाता है। न केवल अग्नि पर तपाता ही है, अपितु जल का, सोम का, स्पर्श भी करता है जो शान्ति का प्रतीक है। ब्रह्मचारी का पुरुषार्थ और फल, जहाँ अग्नि से तपा हुआ हो, वहाँ उसे सोम का, जल का आतञ्चन भी मिला हो, जल की-सी शान्ति, स्वच्छता और नम्रता भी हो—चेहरे की दीप्ति और वर्चस् सोम से स्निग्ध होकर दुगुना हो जाय। ब्रह्मचारी के मुखादित्य पर अद्भुत छटा होनी चाहिए। मन्त्रों में इस कर्म को भी स्वयं अग्नि की भाँति त्रित् ही प्रस्तुत किया गया है—**'मयि मेधां मयि प्रजां मयि अग्निस्तेजो दधातु**[२]।'

बालाग्नि का यह बीज दीक्षान्त में जब वटु से वट का रूप धारण कर लेता है, राष्ट्र-यज्ञ में राष्ट्र-मुख ब्राह्मण के मिष से आहवनीय बनकर, राष्ट्र-उदर वैश्य के मिष से गार्हपत्याग्नि बनकर और राष्ट्र-हृदय क्षत्रिय के मिष से दक्षिणाग्नि बनकर बस जाता है, तो मानो

---

१. अथर्व० ७.५०.८ २. आश्व० सू० १.२१.४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राष्ट्र की त्रिलोकी—पृथिवी, द्यु और अन्तरिक्ष लोक में व्यापने से विष्णु-पद का भागी बनता है। तब कहीं हमें अनुभव होता है कि वह चिंगारी नहीं, एक सूर्य था; वामन नहीं, विष्णु था।

अग्निरेकपाद्

अग्नि एकपाद् है, अज है। जब अग्नि केन्द्रोन्मुख होता है, तो वह भी अजायमान अवस्था को प्राप्त होता है। और जब अग्नि केन्द्रापगामी होता है तो वह भी विजायमान अवस्था को प्राप्त हो जाता है। अग्नि-पशु भी अज-पशु की भाँति चतुष्पाद् पशु है। अग्नि के तीन चरण—१. पृथिवी पर अग्नि रूप में, २. अन्तरिक्ष पर विद्युद्रूप में और ३. द्यु-लोक पर आदित्यरूप में प्रकट हैं, प्रत्यक्ष हैं, जो अग्नि के विजायमान रूप हैं। अग्नि का एक चरण पृथिवी के गर्भ में, नहीं-नहीं, हर वस्तु के केन्द्र में अप्रकट है, अप्रत्यक्ष है, अजायमान है। यह विज्ञान और दर्शन-सम्मत सिद्धान्त है कि अग्नि प्रत्येक पदार्थ में विद्यमान है, जातमात्र में विद्यमान है। उस अग्नि को ही वेदों में **जातवेदस्** कहा है। ऋग्वेद की ऋचा है—**जन्मन् जन्मन् निहितो जातवेदः**। इसी को आधार बनाकर आचार्य यास्क ने जातवेदस् का निर्वचन किया—**जाते जाते विन्दते इति जातवेदः**[१]। जातवेदस् अग्नि को मन्थन द्वारा ही प्रकट किया जा सकता है। यजुर्वेद में इसका वर्णन क्या ही उत्तमतया किया है—**त्वामग्ने पुष्करादध्यथर्वा निरमन्थ मूर्ध्नो विश्वस्य**

१. ऋ० ३.१.२०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाघतः[१]। तथा **त्वामग्नेऽङ्गिरसो गुहा हितमन्वविन्दन् शिश्रियाणं वने वने। स जायसे मथ्यमानः सहो महत् त्वामाहुः सहसस्पुत्रमङ्गिरः॥**

अग्नि के दो रूप

याज्ञिक लोग इस प्रक्रिया को अग्नि-मन्थन संज्ञा देते हैं। आधान से पूर्व यजमान अग्नि तैयार करता है। यह तैयारी अग्नि की उत्पत्ति से ही संभव है। अग्नि की उत्पत्ति मन्थन द्वारा की जाती है, इसकी संभावना तभी है जब अग्नि अरणियों में विद्यमान हो, अरणियों में विद्यमान अग्नि अजायमान है। मन्थन द्वारा प्रकट अग्नि विजायमान है। अब तो प्रजापति की भाँति अग्नि के बारे में भी कहा जा सकेगा '**अग्निश्चरतिगर्भे अन्तरजायमानो बहुधा विजायते**'। अग्नि के विजायमानरूप अनन्त हैं। वह चिंगारी है, अंगारा है, ज्वाला है, ज्योति है, प्रकाश है, ताप है। मुण्डकोपनिषद् के ऋषि ने तो अग्नि की लपलपाती सात जिह्वाओं का वर्णन इस प्रकार किया है—**काली कराली च मनोजवा च सुलोहिता या च सुधूम्रवर्णा। स्फुलिङ्गिनी विश्वरूपी च देवी च लेलीयमाना इति सप्तजिह्वा**[२]। मानो अग्निरूप अज अपनी इन सात जिह्वाओं से सब जगत् को चाट जाना चाहता हो अथवा अपनी सप्त जिह्वारूप तूलिकाओं से सृष्टि की हर वस्तु में रूप-रंग भरकर अपने विजायमान रूप को प्रकट करना चाहता हो। अग्नि के विजायमानरूप से ही तो नानारूपात्मक जगत् हो उठा है, तभी तो ऋषि

---

१. यजु० १५.२२, २८ २. मुण्डको० १.२.४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के शब्दों में सहसा निकलता है **चित्रं देवानामुदगाद-नीकम्**[1]। शतपथकार याज्ञवल्क्य अग्नि के रूप पर मोहित हो कह उठे **चित्रोऽसीति सर्वाणि हि चित्राण्यग्निः**[2]। —हे अग्ने! तू प्रत्यक्ष चित्र है और जितने भी चित्र दृष्टिगोचर हो रहे हैं उन सब में तू ही चित्रित है, प्रकृति की भाँति तू भी चितकबरी है। सच कहें तो यह चितकबरा जगत् तेरे ही कारण है, चींटी से लेकर हाथी तक और प्राणियों में सर्वोत्तम प्राणी मनुष्य तक तनुओं का निर्माण तुझसे ही हुआ है। तेरा (तनुकृत्) विशेषण सार्थक है। तेरे तीन चरण हैं, नील, लोहित पीत, अनन्त वर्णों को जन्म देते हैं, जबकि तेरा चतुर्थ चरण श्वेत वर्ण के रूप में सब वर्णों को अपने में लीन कर लेता है, मानो अग्नि भी प्रकृति की भाँति साम्यावस्था को प्राप्त हो गई हो।

एकाक्षर की एकपाद् है

अग्नि सप्त जिह्वाओं से जहाँ अपने विजायमान रूप को प्रकट करता है, वहाँ केन्द्र में वह अजायमान रूप में अवस्थित रहता है। अग्नि की इस अजायमान अवस्था को यजुर्वेद में **एकाक्षर** कहा गया है तद्यथा **अग्निरेकाक्षरेण प्राणमुदजयत्**[3]। इसी को तैत्तिरीय संहिताकार ने **अग्निरेकाक्षरेण वाचमुदजयत्** कहा। अग्नि केन्द्र में एकाक्षर है, तो परिधि में अनन्ताक्षर; एकाक्षर अजायमान है, अजायमान के लिए एकाक्षर से उपयुक्त संज्ञा हो भी क्या सकती है? अजायमान होना

---

१. यजु० १३.४६ २. शत० ७.४.१.२४ ३. यजु० १.३१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अज अवस्था का परिचायक है। अजायमान होना, एकाक्षर होना, एक ही बात है। इसको ज्यामिति की भाषा में समझाया जा सकता है। उसमें प्रयुक्त केन्द्रबिन्दु एकाक्षर है। रेखा, त्रिकोण, चतुष्कोण, पञ्चकोण, षट्कोण, सप्तकोण, अष्टकोण आदि अनन्त आकृतियाँ द्वयक्षर, त्र्यक्षर, चतुरक्षर, पञ्चाक्षर, षडक्षर, सप्ताक्षर, अष्टाक्षर आदि कहलाएँगे। एकाक्षर अविनाशी है, नित्य है, अटल है, स्थिर है। उसी एकाक्षर को केन्द्र बनाकर विविध कोणाकृतियाँ बनाई जाती हैं। एकाक्षर बिन्दु (प्वॉइंट) अजायमान है, शेष सब आकृतियाँ विजायमान हैं। केन्द्रबिन्दु **अग्नि** एकाक्षर है, समानान्तर रेखाद्वय, **अश्विनौ** द्वयक्षर हैं, त्रिकोण **विष्णु** त्र्यक्षर हैं, चतुष्कोण **सोम** चतुरक्षर है, पञ्चकोण **पूषा** पञ्चाक्षर है, षट्कोण **सविता** षडक्षर है। यजुर्वेद में यह अक्षरगणना सप्तदशाक्षर तक गई है। इन चारों मंत्रों में बहुविध विद्याओं के बीज विद्यमान हैं।

ऋग्वेद की प्रसिद्ध ऋचा में अग्नि के अजायमान और विजायमान उभयविध रूपों का वर्णन हुआ है। यही कारण है कि मन्त्र में अग्नि देवता का उल्लेख दो बार हुआ है। तद्यथा—

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्। एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः॥

मंत्र के तृतीय चरण में अग्नि के अजायमान रूप का वर्णन है तो शेष चरणों में अग्नि के विजायमान रूप वर्णित हैं। केन्द्र में **एकं सदग्निं** एकमात्र प्रतिष्ठित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अग्नि को **विप्रा बहुधा वदन्ति** मेधावी लोग बहुत प्रकार से वर्णित करते हैं। उपरिवर्णित विवेचन से स्पष्ट हुआ कि अग्नि एकाक्षर है, एकपाद् है, अज है, जिसका वर्णन ऋग्वेद में इस प्रकार हुआ है—**अजो न क्षां दाधार पृथिवीं तस्तम्भ द्यां मन्त्रेभिः सत्यैः। अजो अजति गच्छतीत्यजोऽनिः। यद्वा न जायते इत्यजः। जन्मरहित इत्यर्थः। न इव क्षां इति पृथिवी नाम। क्षां भूमिं दाधार अयमग्निः प्रकाशकत्वेन धारयति।** इस मंत्र का देवता अग्नि है। जो गतिशील होने से अज-संज्ञक है अथवा अनुत्पन्न होने से अज है, वह अग्नि पृथिवी को धारण कर रहा है।

१. एकं सद्विप्रा **बहुधा** वदन्ति। —ऋ० १.१६४.४६

२. सुपर्णं विप्राः कवयो वचोभिरेकं सन्तं **बहुधा** कल्पयन्ति।
—ऋ० १०.११४.५

३. एक एवाग्निः **बहुधा** समिद्धः। —ऋ० ८.५८.२

४. तन्वतां **यज्ञं बहुधा** विसृष्टा।

५. प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तरजायमानो **बहुधा** विजायते।
—अ० १०.८

६. महाभाग्याद् देवताया एक एव आत्मा **बहुधा** स्तूयते।

७. अनन्ता वै वेदाः।

८. वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है।
—महर्षि दयानन्द

वेदों में **कतिधा एकधा बहुधा** पदों का प्रयोग अध्येता को इंगित करता है कि प्रतिपाद्य विषय को बहुत प्रकार से देखे—विभिन्न कक्षाओं में देखे। इनका समाधान ब्राह्मण ग्रन्थों के आश्रित ही है। शतपथ के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आधार पर अध्येता विभिन्न कक्षाओं में अग्नि तत्त्व का अवलोकन कर सकता है तद्यथा—

अथाध्यात्मम्

१. अग्निरेव ब्रह्म। —श० १०.४.१.५
२. अग्निर्वा आयुः। —श० ६.७.३.७
३. अग्निरु प्राणः। —श० १०.१.४.१२
४. अग्निरु सर्वकामाः। —श० १०.२.४.१
५. अग्निर्वा अहः। —श० ३.४.४.१५
६. अग्नि वैऽपाप्मनो ऽपहन्ता। —श० २.३.३.१३
७. अग्निर्वै होता (अधि दैवं वागध्यात्मम्)। —श० १.२.११.४
८. अमृतो ह्यग्निः तस्मादाहादब्धायविति। —श० १.९.२.२०
९. अयं वाऽअग्निर् ऋतमसावदित्यः सत्यम्। —श० ६.४.४.१०
१०. आत्मैव (आत्मा एव)। —श० ७.३.१.६७
११. एष (अग्निः) उ वा इमाः प्रजाः प्राणो भूत्वा बिभर्ति तस्माद्वेवाह भारतेति भरतवत् मा०। —श० १.५.१.८

अथाधिदैवम्

१. अग्निरेव सविता। —गो० १.१.१३
२. अग्निर्वा अर्कः। —श० ६.७.३.७
३. अग्निर्वै होता (अधिदैवं वागध्यात्मम्)। —श० १२.१.१.४, १.४.१.२४, ६.४.२.६

अथाधिभूतम्

१. अग्निरेव सविता।
२. अग्निर् दीक्षितः पृथिवी दीक्षा।
३. अग्निर्वाव यमः इयं यमी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथाधिप्रजम्

१. अग्निरु सर्वे कामाः। —श० १०.२.४.१
२. योषा वै वेदिः वृषाग्निः। —श० १.२.५.१५
३. योषा वा आपो वृषाऽग्निः मिथुनमवैतत् प्रजननं क्रियते। —श० १.१.१.२०
४. अग्निर्वै मिथुनस्य कर्त्ता प्रजनयिता। —श० ३.४.३.४
५. अन्नादोऽग्निः। —श० २.१.४.२८

अथाधिविद्यम्

१. अग्निराचार्यः
२. एष वै देवाननुविद्वान् यदग्निः। —श० १.५.१.६
३. ततोऽस्मिन् (अग्नौ) एतद्वर्च आस। —श० ४.५.४.३

अथाधिराष्ट्रम्

१. अग्निर्वै देवानाम् मुखम्। —श० २.५.१.८, ३.९.१.६
२. अग्ने महां असि ब्राह्मण भारत। —श० १.४.२.२
३. अयं वाऽअग्निर्लोकः (अग्निर्ब्रह्म च क्षत्रं च)। —श० ६.६.३.१५, १.८.२.१३

अथाधियज्ञम्

१. अग्निर्वै ब्रह्म यज्ञः। —श० ५.२.३.६, ८.५.१.१२
२. अग्निर्वै यज्ञः। —श० ३.४.३.१९
३. अग्निर्वै यज्ञस्य अवराध्यो। —श० ५.२.३३.६
४. अग्निर्वै योनिर्यज्ञस्य। —श० १.५.२.११, ३,१,३,२८
५. अग्निर्वै होता। —श० १२.१.१.४, १.४.१.२४, ६.४.२.६
६. अग्निर्वै होता वेदिषद्। —श० ६.७.३.११
७. अग्निं पुरोहितम्। —ऋ० १.१.१
८. अग्निर्वै पुरस्ताद्यत्तमाह पुर इति प्राञ्चं ह्यग्निमुद्धरन्ति प्राञ्चमुपचरन्ति। —श० ८.१.१.४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

९. अग्निर्वै देवानां व्रतपतिः। —श० १.१.१.२
१०. यजमानोऽग्निः। —श० ६.३.३.५
११. अग्निर्वै यज्ञः।
१२. अग्निर्वै देवानां मृदुहृदयतमः। —श० १.६.२.१०
१३. अग्निर्वै प्रथमा विश्वज्योतिः।
—श० ७.४.२.२५, ८.१.१.४
१४. अग्निर्वै सर्वा देवता। —श० १.६.२.८
१५. अग्निर्वै होता वेदिषत्। —श० ६.७.३.११
१६. अग्निर्ह वै धूः। —श० १.९.२.९
१७. अग्नौ हि सर्वाभ्यो देवताभ्यो जुह्वति। —श० १.६.२.८
१८. आहुतयो वाऽस्य (अग्नेः) प्रियं धाम।
—श० २.३.४.१४
१९. उभयं वा एतद् अग्निर्देवानां होता च दूतश्च।
—श० १.४.५.४
२०. एतद्वा अग्नेः प्रिय (प्रियतमं) धाम यद् घृतम्।
—श० १.३.२.१७
२१. अग्निरेव महान्। —श० १०.४.१.४
२२. एष (अग्निः) हि देवेभ्यो हव्यं भरति तस्माद् भरतोऽग्निरित्याहुः। —श० १.४.२.२, १.५.१.८
२३. एष हि यज्ञस्य सुक्रतुर्यदग्निः। —श० १.४.१.३५
२४. एष हि हव्यवाड् हव्यवाहनो यदग्निः।
—श० १.४.१.३९
२५. गन्धो हैवास्य (अग्नेः) सुगन्धितेजनम्।
—श० ३.५२.१७
२६. गायत्री छन्दोऽग्निर् देवता शिरः। —श० १०.३.२.१
२७. गायत्री वा अग्निः। —श० १.८.२.१३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२८. चत्वारो ह वा अग्नयः। आहित उद्धृतः प्रहृतो विहृतः। —श० ११.८.१.९

२९. तदेभ्यः (देवेभ्योऽग्निः) स्विष्टमकरोत् तस्मात् स्विष्टकृदिति। —श० १.७.३.९

अथाधि संवत्सरम्

१. अग्निरेव सविता।

२. अग्निर्वा अहः सोमो रात्रिः। —श० ३.४.४.१५

३. अग्निर्वा अर्कः। —श० २.५.१.४

४. आदित्यो वाऽअस्य (अग्नेः) दिवि वर्चः। —श० ७.१.१.२३

अपने प्रकाशकीय में मैंने अग्निदेवता-विषयक पर्याप्त लम्बा लेख लिख दिया है। इसके भूमिका-लेखक विद्वद्वर्य श्री पं० रामनाथ जी वेदालंकार ने पर्याप्त लिखा है और शोधकर्त्री पुत्री सुमेधा ने अपने ग्रन्थ के ९ अध्यायों में महर्षि दयानन्दकृत वेदभाष्य के परिप्रेक्ष्य में अग्नि देवता के हर पहलू पर अपने विचार प्रस्तुत कर आनेवाले शोधकर्त्ताओं के लिए मार्ग प्रशस्त किया है। हम आशा करते हैं कि पुत्री सुमेधा इसी प्रकार शोधकार्यों में प्रवृत्त हो अन्य देवताओं पर भी लिखने का प्रयत्न करेंगी।

प्रतिष्ठान को इस बात की प्रसन्नता है कि वह इस ग्रन्थ-रत्न का प्रकाशन कर कुछ वेद की सेवा कर सका है।

विदुषां वशंवदः

—स्वामी दीक्षानन्द सरस्वती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आग्नेय शतकम्

ऋग्वेद के, प्रथम मण्डल के, प्रथम सूक्त के प्रथम मन्त्र में **अग्नि** को **पुरोहित** कहा है। वह है भी उचित। जब भगवान् मनुष्यमात्र के मार्गदर्शन के लिए कोई उपदेश देने लगें, तो सबसे प्रथम कोई **आदर्श** उपस्थित करना चाहिये, जिसका अनुकरण उन्हें अपने जीवन में करना है। सो पुरोहित शब्द का अर्थ है—**आदर्श** (Model)। जिसको जिस किसी क्षेत्र में भी किसी का अनुकरण करना हो, उसके लिए आदर्श उसके 'सामने रक्खा जाएगा'। बस, यही पुरोहित शब्द का अर्थ है। **पुरः**=सामने, **हित**=रक्खा हुआ। उस आदर्श में से भी जिस विशेष गुण को आगे रखना है, वह है—आगे बढ़ना, इसलिये इस वेद का आरम्भ 'अग्नि' शब्द से हुआ है, जिसका अर्थ है—**अग्र+णी=अग्र+नी**, अर्थात् आगे ले जानेवाला।

आगे बढ़ने के लिए दो बातें अपरिहेय हैं—१. शक्ति-सूचक गर्मी, २. प्रकाश। ये दोनों बातें भौतिक आग में विद्यमान हैं, इसीलिये इसे भी अग्नि कहते हैं। अब यह 'आगे बढ़ना' किस प्रकार का आगे बढ़ना है, इसे दसवें मण्डल के प्रथम मन्त्र में इस प्रकार स्पष्ट किया है—

निर्जगन्वान् तमसो ज्योतिषागात्।

अग्नि की कृपा से साधक यजमान अन्धकार से निकलकर ज्योति के साथ आ मिला है। स्पष्ट है कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आगे बढ़ने का अर्थ यहाँ **'अन्धकार से प्रकाश की ओर', 'अज्ञान से ज्ञान की ओर', 'असत्य से सत्य की ओर'** अथवा **'मृत्यु से अमृत की ओर'** समझना चाहिये। यह अग्नि कौन है? यह बात चौथे मन्त्र में **'विक्षु मानुषीषु होता'** (ऋ० १०.१.४) इन शब्दों में प्रकट की गई है। मनुष्य-प्रजा में आहुति करनेवाले दो ही हो सकते हैं—मनुष्य अथवा परमात्मा। सो यही दो अग्नि के मुख्यार्थ हैं। यही बात छठे मन्त्र में **पुरोहितो राजन् यक्षीह देवान्** (ऋ० १०.१.६) से प्रकट होती है—'हे अग्ने! तू हमारा पुरोहित, अर्थात् आदर्श बनकर देवों के साथ संगठन करता है अथवा देवों को संगठित करता है।' ब्राह्मण-पक्ष में 'देवों के साथ सङ्गतिकरण करता है' यह अर्थ होगा और परमात्मा के पक्ष में 'देवों को सङ्गतिकरण में लाता है' यह अर्थ होगा। इस प्रकार जिस पुरोहित शब्द के साथ प्रथम मण्डल का आरम्भ हुआ था, उसी पुरोहित शब्द के साथ अन्तिम दशम मण्डल का भी आरम्भ होने से उपक्रम और उपसंहार की एकता स्थापित हो गई। अब इस पुरोहित शब्द को ऋग्वेद के अन्तिम सूक्त के साथ मिलाइये तो बात बिलकुल स्पष्ट हो जाएगी। अन्तिम सूक्त में वही पुरोहित कहता है कि—

सं गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते॥

—ऋ० १०.१९१.२

'हे मनुष्यो! अपने कल्याण के लिए अज्ञान से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्ञान की ओर बढ़ो। जड़ सूर्य, अग्नि आदि देवों से तथा चेतन विद्वान् तथा परमात्मा से और पशु-पक्षी आदि से भी यह ज्ञान प्राप्त करने के लिए संगठित पुरुषार्थ करो।' इस ज्ञान-यज्ञ का सर्वश्रेष्ठ साधन है **परस्पर संवाद**। बस, यही इस वेद का तात्पर्य है कि हम अन्धकार से प्रकाश में आ जावें। अब वह ज्ञान प्राप्त किस प्रकार हो इसको १.१.३ मन्त्र में इस प्रकार स्पष्ट किया गया है—

१. अग्निना रयिमश्नवत् पोषमेव दिवेदिवे।
यशसं वीरवत्तमम्॥ —ऋ० १।१।३

हम अग्नि द्वारा इस प्रकार का धन प्राप्त करें जो दिनों-दिन पुष्टि देनेवाला हो, यशोवर्धक हो तथा हमें वीरों से युक्त बनाने में सर्वश्रेष्ठ हो।

२. या नः पीपरदश्विना ज्योतिष्मती तमस्तिरः।
तामस्मे रासाथामिषम्॥ —ऋ० १।४६।६

'विद्या को विद्यार्थियों तक, विद्यालय तक पहुँचाने वाले हे अश्विनौ! जो ज्योतिष्मती इष्, अर्थात् ज्योतिष्मान् अन्न हमें पार उतार कर अन्धकार से परे पहुँचा दे वह (ज्योतिष्मती इष्, अर्थात् ज्योतिष्मान् अन्न) हमें दो।'

३. तरणिर्विश्वदर्शतो ज्योतिष्कृदसि सूर्य।
विश्वमा भासि रोचनम्॥ —ऋ० १।५०।४

इसमें सूर्य के दृष्टान्त से राजा को कहा है कि—'हे राजन्! तू इस संसार का तारनेवाला है। अपनी प्रजा को विश्व, अर्थात् समस्त ज्ञान का दर्शन कराता है। तू ज्योति का उत्पन्न करानेवाला है। हे सूर्य! तू अपनी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किरणों से संसार को रोचक बना देता है।' जिस ज्ञान के बल से लोग उस परम सूर्य परमात्मा तक पहुँचते हैं।

'अति तृष्टं ववक्षिथाथैव सुमना असि'।

—ऋ० ३।९।३

तूने कठोर यातनाएँ सही हैं, फिर भी तू प्रसन्नचित्त है।

४. ईयिवांसमति स्त्रिधः शश्वतीरति सश्चतः। अन्वीमाविन्दन्निचिरासो अद्रुहोऽप्सु सिंहमिव श्रितम्॥ —ऋ० ३।९।३

ढूँढनेवाले गुणग्राहकों ने, उसे शत्रुओं को लाँघते हुए तथा चारों ओर से घिरती हुई शत्रुसेनाओं को पार करते हुए और उन सेनाओं की धाराओं में सिंह के समान डटते हुए भी देखा है।

५. तं त्वा विप्रा विपन्यवो जागृवांसः समिन्धते। हव्यवाहममर्त्यं सहोवृधम्॥ —ऋ० १।१०।९

वह प्रजा के कानों में ठीक हवि पहुँचाता है, सहनशक्ति बढ़ाता है। वह अपने यश से अमर है।

६. दीदिवांसमपूर्व्यं वस्वीभिरस्य धीतिभिः। ऋक्वाणो अग्निमिन्धते होतारं विश्पतिं विशाम्॥ —ऋ० ३।१३।५

ज्ञान की खोज करनेवाले इस कवि को नानाप्रकार की सामग्री देकर प्रदीप्त करते हैं, पर वह अपनी प्रतिभा से उस ज्ञान में एक अपूर्वता पैदा कर देता है। इसीलिये वह प्रजा के नेताओं का भी नेता कहलाया है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

७. मा नो अग्नऽमतये माऽवीरतायै रीरधः। माऽगोतायै सहसस्पुत्र मा निदेऽप द्वेषांस्या कृधि॥ –ऋ० ३।१६।५

हे अग्ने! हमें ज्ञानहीन, वीरताहीन तथा गोहीन मत होने दे। कवि प्यारे! हमारे अन्दर से द्वेष दूर करके शत्रुओं को भगा दे।

८. भवा नो अग्ने सुमना उपेतौ सखेव सख्ये पितरेव साधुः। पुरुद्रुहो हि क्षितयो जनानां प्रति प्रतीचीर्दहतादरातीः॥ –ऋ० ३।१८।१

इस धरती पर बसनेवाली बस्तियाँ आपस में न लड़ें, यह कवि का काम है। वह काम-क्रोध आदि शत्रुओं को जला दे, जिससे भयङ्कर द्रोह मिटे।

९. अयं सो अग्निर्यस्मिन् सोममिन्द्रः सुतं दधे जठरे वावशानः। सहस्रिणं वाजमत्यं न सप्तिं ससवान त्सन्त्स्तूयसे जातवेदः॥ –ऋ० ३।२२।१

राजा की जठराग्नि उत्तम भोजन माँगती है। वह अपने कोष में उत्तम से उत्तम साहित्य चुन-चुनकर संग्रह करना चाहता है जिससे कि उसका उपयोग, आनेवाले विद्वान् कर सकें। सो, यह सुकवि वह अग्नि है, जिसमें राजा अपने चुने हुए साहित्य-रूपी सोम का समर्पण करना चाहता है।

१०. अग्ने दिवो अर्णमच्छा जिगास्यच्छा देवाँ ऊचिषे धिष्ण्या ये। या रोचने परस्तात् सूर्यस्य याश्चावस्तादुपतिष्ठन्त आपः॥ –ऋ० ३।२२।३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हे कवि! तू प्रभुभक्ति-रूपी जल की ओर लपकता है। सूर्य-चन्द्र आदि देव भी तेरे सम्पर्क में आकर, तेरे द्वारा दिव्य सन्देश देते हैं तथा बुद्धिवर्द्धक विद्वानों को भी तू उनके ज्ञानकोष का संग्रह करने के लिए कहता है और वे तेरा कहा मानते हैं। कौन? जो सूर्य, अर्थात् वीर्य से परे हैं और जो सूर्य, अर्थात् वीर्य से नीचे हैं, अर्थात् वीर्यरक्षा द्वारा अन्तिम ध्येय ब्रह्म-प्राप्ति तक पहुँचे हुए महापुरुष और उनसे वीर्यरक्षा-विधि के ज्ञान के इच्छुक साधक-वर्ग, ये दोनों प्रकार की प्रजा तेरे पास आती हैं, क्योंकि तू उन्हें रुचिकर (=कान्तिमान्) बनाना जानता है; तू स्वयं रोचक लोक तक पहुँचा हुआ है।

११. नि त्वा दधे वर आ पृथिव्या इळायास्पदे सुदिनत्वे अह्नाम्। दृषद्वत्यां मानुष आपयायां सरस्वत्यां रेवदग्ने दिदीहि॥ –ऋ० ३।२३।४

सो, मैं वाङ्मय के प्रतिष्ठित पद पर तुझे स्थापित करता हूँ। तू इस धरती पर सुदिन लानेवाला है। है तो तू मनुष्य, पर अद्भुत मनुष्य है। कोई विद्वानों की सभा में चमकते हैं, कोई मूर्खों में, परन्तु तू तो सरस्वती नदी, अर्थात् विद्वानों की सभा तथा दृषद्वती नदी, अर्थात् जड़मति मूर्खों की सभा दोनों नदियों में तैरनेवाला है। सो, तू इस प्रकार चमक कि सब तुझे 'रयीणां रयिवित्' कहने लगें।

१२. अग्ने सहस्व पृतना अभिमातीरपास्य। दुष्टर-स्तरन्नरातीर्वर्चोधा यज्ञवाहसे॥ –ऋ० ३।२४।१

हे कवे! बाह्य तथा आभ्यन्तर—दोनों अभिमानभरी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सेनाओं को हटा। तू शत्रुओं से हमें पार कर दे, पर तुझे पार न कर सकें।

१३. अग्निर्द्यावापृथिवी विश्वजन्ये आ भाति देवी अमृते अमूरः। क्षयन्वाजैः पुरुश्चन्द्रो नमोभिः॥ —ऋ० ३।२५।३

कवि के सम्पर्क में आकर जमीन-आसमान विश्व-कल्याणकारी हो जाते हैं और इस प्रकार की कविता भी अमर हो जाती है और कवि भी।

१४. वैश्वानरं मनसाग्निं निचाय्या हविष्मन्तो अनुषत्यं स्वर्विदम्। सुदानुं देवं रथिरं वसूयवो गीर्भी रण्वं कुशिकासो हवामहे॥ —ऋ० ३।२६।१

ऐसे सहृदय लोगों की सभा उत्तम कवि से कहती है—हम प्रजा के दुःखों की वेदना से पीड़ित प्रजा-हितैषी लोग (=कुशिकासः), जब खूब मनन करके जान गए कि यह कवि वैश्वानर, अर्थात् विश्वभर के मनुष्यों का हितैषी है, सत्य-परायण (=अनुषत्य) है तथा सबको सुख दिला सकता है, अपनी विद्या का खूब सुदान करता है, सदा लोकप्रियता के कारण रथ पर चढ़ा रहता है, तो इस प्रजा के सुखपूर्वक बसने की कामना से प्रजा को मुग्ध करनेवाले इस कवि को हम लोग बुलाते हैं। इसकी सेवा के लिए हमने बहुत उत्तम हवि तैयार की है।

१५. अग्निरस्मि जन्मना जातवेदा घृतं मे चक्षुरमृतं म आसन्। अर्कस्त्रिधातू रजसो विमानोऽजस्रो धर्मो हविरस्मि नाम॥ —ऋ० ३।२६।७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह कवि कहता है—'आज मेरा जन्म सफल हुआ, आज मैंने जो जन्म पाया, सो इस जन्म से मैं जातवेदा अग्नि कहलाया। मेरी आँखों में वीर रस को दीप्त करनेवाला घृत है तथा मुख में अमृत है—यह मैंने आज अनुभव किया है।'

१६. शतधारमुत्समक्षीयमाणं विपश्चितं पितरं वक्त्वानाम्। मेळिं मदन्तं पित्रोरुपस्थे तं रोदसी पिपृतं सत्यवाचम्॥ —ऋ० ३।२६।९

हे रोदसी, अर्थात् राजा और प्रजा! गुरु-शिष्य! अथवा दम्पती! तुम दोनों मिलकर ऐसे सच्ची वाणी बोलनेवाले बनकर परमेश्वर पिता तथा धरती माता की गोद में मस्त होकर खेलते हुए, इन सैकड़ों ज्ञान की ओर रस की धाराएँ बरसाने वाले फव्वारे का—इसी ओजस्वी व्याख्याताओं के पिता व्याख्याता का सदा आदरपूर्वक पालन करो और इसकी इच्छाएँ पूरी करो।

१७. तनूनपादुच्यते गर्भ आसुरो नराशंसो भवति यद्विजायते। मातरिश्वा यदभिमीत मातरि वातस्य सर्गो अभवत् सरीमणि॥ —ऋ० ३।२९।११

वीर पुरुष चार कोटियों में से गुजरता है। पहिली का नाम है—'तनूनपात्', अर्थात् परिस्थितियों से मार नहीं खाऊँगा—'मैं अपनी तनू को गिरने नहीं दूँगा', परन्तु यह भावना आसुर भावना है; 'हारना नहीं, चाहे कुछ भी करना पड़े'। यही राजनीति में सारे भ्रष्टाचार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का मूल है, परन्तु वीर रस का ठीक विकास होना है, उसे नर की प्रशंसा करनी आनी चाहिये; चाहे वह विरोधी ही क्यों न हो। इस गुण-ग्राहकता के कारण वह **'नराशंस'** कहलाता है। यही वीर की दूसरी कोटि है। इसके पश्चात् जब प्रशंसा की भावना इतनी बढ़ जाती है कि वह कोई माँ बना लेता है अथवा किसी की माँ बन जाता है, तब वह **'मातरिश्वा'** कहलाता है, क्योंकि वह माँ में समा जाता है। यही वीर की तीसरी कोटि है, परन्तु जब उस माँ पर अथवा उस वत्स पर आक्रमण होता है, तो वह मातरिश्वा से **'वातस्य सर्गः'** हो जाता है—मन्द पवन से प्रभञ्जन—मीठी हवा से तूफान हो जाता है। १२वें मन्त्र में इसे फिर कवि कहा है।

१८. अलातृणो वल इन्द्र व्रजो गोः पुरा हन्तोर्भय-मानो व्यार। सुगान् पथो अकृणोन्निरजे गाः प्रावन् वाणीः पुरुहूतं धमन्तीः॥

—ऋ० ३।३०।१०

'वल' नाम उस रूढ़िवाद का है, जो मनुष्यों को अन्धे विश्वासों में फँसाए रखता है। यह शब्द **'वल वेष्टने'** [?, **'वल संवरणे....'** भ्वा०] धातु से बना है। इसी से **वलय** शब्द बना है। सो यह मनुष्यों की गौवों को, अर्थात् प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करनेवाली इन्द्रियों को घेरे रहता है, अपने क्षेत्र से बाहिर चरने ही नहीं देता। इसका उदाहरण **विनियोगवाद** है, जो सायण जैसे प्रतिभाशाली शास्त्राक्षर-भण्डार विद्वानों को भी सत्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तक नहीं पहुँचने देता। यह **'अलातृण'** है। ज्ञान-प्राप्ति के लिए मनुष्य का मस्तिष्क जिधर से बाहिर निकलना चाहे, अन्धविश्वास के डण्डे से उधर से मारकर फिर उसे अपने **व्रज**, अर्थात् अपनी चरागाह में घुसेड़ देता है। इन्द्र राज्य को जब आगे बढ़ाना चाहता है, तो उसका काम सबसे पहिले इससे निपटना होता है। इससे छूटते ही इन्द्रियाँ सत्यज्ञान-प्राप्ति का काम करने लगती हैं और इस प्रकार गौवों के लिए वलासुर के बाड़े से छूटकर ज्ञान-क्षेत्र में चरने का मार्ग सुगम हो जाता है, परन्तु ऐसे समय इन्द्र को दादा बस्तीराम की-सी **'धमन्ती'**, अर्थात् धमाकेदार वाणियों की आवश्यकता पड़ती है। उस समय पुरुहूत (=सर्वलोकशरण) की रक्षा, ये **'धमन्ती'** वाणियाँ ही करती हैं।

१९. महि ज्योतिर्निहितं वक्षणास्वामा पक्वं चरति बिभ्रति गौः। विश्वं स्वाद्म सम्भृतमुस्रियायां यत्सीमिन्द्रो अदधाद् भोजनाय॥

—ऋ० ३।३०।१४

इन ज्ञान-वहन करनेवाली लोकप्रिय कविताओं में (=वक्षणासु) महान् ज्योति रोचक-रूप में रख दी गई है। यह लोकवाणी गौः यद्यपि **'सद्यः-प्रसूता'** है, परन्तु इसके स्तनों में जो दूध है, वह परिपक्व ज्ञान का है। हर स्वादु भोजन का इस वाग्धेनु के स्तनों में राजा ने सम्भरण किया है। यही तो वह लोकप्रिय ज्ञान-संग्रह है, जिसे इन्द्र ने प्रजा के मानसिक भोजन के लिए यत्नपूर्वक सम्भाला है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२०. त्वां ह्यग्ने सदमित् समन्यवो देवासो देवमरतिं न्येरिरे इति क्रत्वा न्येरिरे। अमर्त्यं यजत मर्त्येष्वा देवमादेवं जनत प्रचेतसं विश्वमादेवं जनत प्रचेतसम्॥ —ऋ० ४।१।१

हे अग्ने! हे पुरोहित! छोटे-छोटे परिवारों तक आपकी व्यवस्था चली। अब बहुत-से परिवारों से मिलकर ग्राम, ग्रामों से जनपद और जनपदों से राष्ट्र बन गए। अब दुष्ट लोगों को दुष्टता करने का अवसर मिला। प्रजा में रोष हुआ। पर रोष से तो काम नहीं चलेगा। दुष्टता किसने की? इसका पता लगाना होगा। झूठ-मूठ किसी ने आरोप तो नहीं लगाया, यह जानना होगा, फिर अपराधी को दण्ड देना होगा, इसलिये अब यह काम तो मनन-सहित रोष से होगा, इसलिये मन्युयुक्त प्रजा ने आपको प्रेरणा की है। आप सब मिलकर अग्नि की (पुरोहित की) सहायता से **प्रचेता** को पैदा करो—'जनत प्रचेतसम्'.....'जनत प्रचेतसम्' चारों ओर से यही आवाज आ रही है—**प्रचेता को पैदा करो।**

इसलिये पुरोहित जी! अपने भाई वरुण को जा घेरो। पुलिस के अधिकारी में इतने गुण होने चाहियें—

१. **सुमति** अर्थात् तीव्र बुद्धि।

२. **यज्ञवत्सल**—संगठन के हित के सामने व्यर्थ को पीछे फैंककर लोकहित चाहनेवाला 'ऋतावान्' विद्वान् तथा नाप-तोल द्वारा बिना परखे, बात न माननेवाला।

३. **'आदित्य'** अर्थात् सूर्य के समान तेजस्वी,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निष्कलङ्क तथा न दबनेवाला।

४. **'चर्षणीधृत्'** अर्थात् प्रजा को प्रेम से वश में करनेवाला तथा उनका पूर्ण सहयोग प्राप्त करनेवाला।

५. **'राजा'**—अपने को राजा तथा राष्ट्रजनों को अपनी आश्रित प्रजा समझनेवाला।

इस प्रकार के प्रचेता को—सदा जागरूक वरुण को उत्पन्न करो और यह प्रयत्न करो कि अग्नि अपने भाई वरुण की ओर अभिमुख होवे—

२१. स भ्रातरं॒ वरु॑णमग्न॒ आ व॑वृत्स्व दे॒वाँ अच्छा॑ सुम॒ती य॒ज्ञव॑नसं॒ ज्येष्ठं॒ य॒ज्ञव॑नसम्। ऋ॒ताव॑ान-मादि॒त्यं च॑र्षणी॒धृत॑ं राजा॑नं चर्षणी॒धृत॑म्॥

—ऋ० ४।१।२

उसे सैनिकों से भी सहायता लेनी होगी। अपितु ऐसे वरुण का उद्भव भी चतुर्मुख प्रतिभावाले **'मरुतों'** में, सैनिकों में, सिपाहियों में ही होगा।

२२. त्रिर॑स्य॒ ता प॑र॒मा स॑न्ति स॒त्या स्पा॒र्हा दे॒वस्य॒ जनि॑मान्य॒ग्नेः। अ॒न॒न्ते अ॒न्तः परि॑वीत॒ आगा॒च्छुचिः॑ शु॒क्रो अ॒र्यो रोरु॑चानः॥ —ऋ० ४।१।७

इस अनन्तकाल की—भूत, वर्तमान, भविष्यत् इन तीनों मणियों में यह सूत्रवत् पिरोया हुआ है। वह दुष्ट-दमनोपयोगी त्रिकालाबाध्य है।

२३. प्र शर्धा॑ आर्त प्रथ॒मं वि॑प॒न्याँ ऋ॒तस्य॒ योना॑ वृष॒भस्य॑ नी॒ळे। स्पा॒र्हो युवा॑ वपु॒ष्यो॑ वि॒भावा॑ स॒प्त प्रि॒यासो॑ऽजनयन्त॒ वृष्णे॑॥ —ऋ० ४।१।१२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाँच इन्द्रियों का अनुभव—पाँच प्रकार का प्रत्यक्ष, इस शास्त्र को जाननेवालों का अनुभव तथा अपनी अनुमान शक्ति की प्रतिभा; ये प्रत्यक्षानुमानजन्य सात प्यारे इस अग्नि को जन्म देते हैं।

२४. ते मर्मृजत दद्रुवांसो अद्रिं तदेषामन्ये अभितो वि वोचन्। पश्वयन्त्रासो अभि कारमर्चन् विदन्त ज्योतिश्चकृपन्त धीभिः॥ –ऋ० ४।१।१४

दण्डाध्यक्ष प्रजा की पशु-भक्ति को नष्ट न करे, नियन्त्रित करे। इन्द्रियनाश न करे, इन्द्रियों का नियन्त्रण सिखावे। उसका उपाय है—उन्हें 'कार'=कर्मपरायण बनावे। जो लोग ऐसी प्रज्ञा तथा कर्म करते हैं वे दुष्टों के दुर्गम से दुर्गम किले तोड़ने में समर्थ होते हैं।

२५. आदित्पश्चा बुबुधाना व्यख्यन्नादिद् रत्नं धारयन्त द्युभक्तम्। विश्वे विश्वासु दुर्यासु देवा मित्र धिये वरुण सत्यमस्तु॥ –ऋ० ४।१।१८

ऐसे राष्ट्र में प्रतिदिन 'विश्वासु दुर्यासु'—घर-घर में पणियों के पञ्जे से, इन्द्रिय-रूप गौवों का मोक्ष होता है। हे मित्रवत् पुरोहित रूप में विद्यमान ब्राह्मणो! तथा हे पाश द्वारा दुष्टों का दमन करनेवाले वरुण लोगो! तुम्हारे सामने एक ही लक्ष्य है—घर-घर के द्युभक्त=देदीप्यमान रत्न मिलें (नकि पणियों द्वारा जीते हुए)। याद रक्खो, जुए के नाश का एक ही उपाय है—घर-घर में 'सत्यमस्तु'=ईमानदारी हो। जुए का सबसे बड़ा शत्रु सत्य है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२६. अच्छा वोचेय शुशुचानमग्निं होतारं विश्वभरसं यजिष्ठम्। शुच्यूधो अतृणन्न गवामन्धो न पूतं परिषिक्तमंशोः॥ –ऋ० ४।१।१९

ब्राह्मणत्व, क्षत्रियत्व, वैश्यत्व तथा उनकी परम सहायक शूद्रत्व की व्रतरूपी आग, सत्य की सबसे बड़ी रक्षक है। यह अग्नि की 'विश्वभरस्' है—सबका सच्चा भरण करनेवाली है। घर-घर में गोदोहन तथा जीविकोपार्जन से पूर्व इस व्रतरूप अग्नि का स्मरण करना आवश्यक है।

२७. यस्तुभ्यमग्ने अमृताय दाशद् दुवस्त्वे कृणवते यतस्रुक्। न स राया शशमानो वि योषन्नेनमंहः परि वरदघायोः॥ –ऋ० ४।२।९

जो इस दुष्टदमन अग्नि की सेवा करते हैं उनका धन से कभी वियोग नहीं होता तथा बुरा चाहनेवालों का पापयुक्त व्यवहार उन्हें कभी नहीं घेर सकता।

२८. यस्य त्वमग्ने अध्वरं जुजोषो देवो मर्त्तस्य सुधितं रराणः। प्रीतेदसद्धोत्रा सा यविष्ठाऽसाम् यस्य विधतो वृधासः॥ –ऋ० ४।२।१०

जब यह अग्नि दुष्ट-दमन के लिए हमें सहायतार्थ बुलावे तो हम सब प्रजाजन प्रसन्न होकर पहुँचें, जिससे यह होत्रा (Rally) प्रसन्नता से भरी हो तथा इस नेता के कार्य की वृद्धि हो जो हमारे लिए दुष्ट-दमन कर रहा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२९. चित्तिमचित्तिं चिनवद् वि विद्वान् पृष्ठेव वीता वृजिना च मर्त्तान्। राये च नः स्वपत्याय देव दितिं च रास्वादितिमुरुष्य॥ –ऋ० ४।२।११

कौन प्रसन्न होकर कार्य करता है? कौन चित्तहीन होकर? किस की पीठ भारी बोझ सहार सकती है? किस की वर्जनीय है? हे अग्ने! तू इस विषय का विद्वान् है। हे अग्ने! हमारे धन की रक्षा के लिए तू दिति, अर्थात् दाता की रक्षा कर तथा अदाता को भली प्रकार बन्धन में कस दे, जिससे वह देना सीखे।

३०. अतस्त्वं दृश्याँ अग्न एतान् पड्भिः पश्येरद्भुताँ अर्य एवैः॥ –ऋ० ४।२।१२

हे अग्ने! तू यह मत देख कि लोग क्या कहते हैं; तू यह देख कि उनके पैर किधर जाते हैं, अर्थात् उनका आचरण क्या है, क्योंकि आचरण करना ही कठिन है, मुख से (=वाणी से) तो सभी देवता बन जाते हैं।

३१. अधा ह यद् वयमग्ने त्वाया पड्भिर्हस्तेभिश्चकृमा तनूभिः। रथं न क्रन्तो अपसा भुरिजोर्ऋतं येमुः सुध्य आशुषाणाः॥ —ऋ० ४।२।१३

जिस प्रकार चतुर शिल्पी पूर्ण नाप-जोख के साथ रथ का निर्माण करते हैं, उसी प्रकार तेरी प्रेरणा से मनुष्य हाथ-पैर, शरीर से नपा-तुला जीवन बिताते हैं। यही दुष्टता के दमन का सर्वश्रेष्ठ उपाय है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३२. अधा मातुरुषसः सप्त विप्रा जायेमहि प्रथमा वेधसो नॄन्। दिवस्पुत्रा अङ्गिरसो भवेमाऽद्रिं रुजेम धनिनं शुचन्तः॥ —ऋ० ४।२।१५

उत्साह-वर्धक साहित्य रूप माता उषा के गर्भ से हम कार्य-कुशल मनुष्य पैदा करें और न टूटनेवाले समस्याओं के दुर्ग को तोड़कर छिपा धन निकालें।

३३. अधा यथा नः पितरः परासः प्रत्नासो अग्न ऋतमाशुषाणाः। शुचीदयन्दीधितिमुक्थशासः क्षामा भिन्दन्तो अरुणीरप व्रन्॥ —ऋ० ४।२।१६

जैसे हृदय में से निकलती हुई अरुण-वर्ण रुधिर से भरी नाड़ियाँ क्षाम (दुबले-पतले) को देदीप्यमान बना देती हैं, वैसे ही क्षीण राष्ट्र को उपभोग-पदार्थों की नाड़ियाँ देदीप्यमान बना देती हैं।

३४. सुकर्माणः सुरुचो देवयन्तोऽयो न देवा जनिमा धमन्तः। शुचन्तो अग्निं ववृधन्त इन्द्रमूर्वं गव्यं परिषदन्तो अग्मन्॥ —ऋ० ४।२।१७

हे अग्ने! तेरे भय से कामचोर लोग भी सुकर्मा बन जाते हैं और जिस प्रकार चर्म-धौंकनी लोहे को तपा देती है, जैसे फेफड़ों की धौंकनी लाल रुधिर का विस्तार करती है, वैसे ही तेरी धौंकनी सुकर्मा पैदा करती है। जब वे कामचोर नहीं रहते, तो चोरी भी नहीं करते।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३५. अकर्म ते स्वपसो अभूम ऋतमवस्त्रन्नुषसो विभातीः। अनूनमग्निं पुरुधा सुश्चन्द्रं देवस्य मर्मृजतश्चारु चक्षुः॥ –ऋ० ४।२।१९

हे अग्ने! हम सौर-चक्ररूप देव के देदीप्यमान चक्षु इस सूर्य का प्रतिदिन स्वागत करते हुए उठते हैं और हर उषा हमें नपे हुए ज्ञान के तेज से आच्छादित करती हुई उठाती है। उस उद्बोधन से हम न केवल कर्मशील बनते हैं, अपितु सुकार्यशील भी बनते हैं।

३६. ऋतेन ऋतं नियतमीळ आ गोरामा सचा मधुमत् पक्वमग्ने। कृष्णा सती रुशता धासिनैषा जामर्येण पयसा पीपाय॥ –ऋ० ४।३।९

जैसे—गाय घास को खाकर दूध बनाती है, जैसे—काली रात्रि दिन-रूपी उज्ज्वल दूध देती है, उसी प्रकार इस दण्डाध्यक्ष की कठोरता से उज्ज्वल लोक-कल्याण जन्म लेता है।

३७. मा कस्य यक्षं सदमिद्धुरो गा मा वेशस्य प्रमिनतो मापेः। मा भ्रातुरग्ने अनृजोर्ऋणं वेर्मा सख्युर्दक्षं रिपोर्भुजेम॥ –ऋ० ४।३।१३

हे अग्ने! तू दुष्टों का निमन्त्रण कभी स्वीकार न कर। उनके संगठन (=यज्ञ) में मत जा, वेशजीवियों में मत जा। हमें कभी कुटिल भाई के ऋण का ग्रास मत बनने दे और उस मित्रवेशधारी शत्रु के अन्न पर न पलने दे जोकि हमें बिना पुरुषार्थ का अन्न खिलाकर आलसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथा अकर्मण्य बनाता है।

३८. रक्षा णो अग्ने तव रक्षणेभी रारक्षाणः सुमख प्रीणानः। प्रति ष्फुर वि रुज वीड्वंहो जहि रक्षो महि चिद् वावृधानम्॥ –ऋ० ४।३।१४

तू हमें बचा। 'प्रतिस्फुर'—दुष्टों का सामना करने के लिए उनसे भी अधिक फुरतीवाला बन, बलवान् बन, बद्धमूल पाप को खदेड़, राक्षसों को मार। यदि वे विशाल आकार धारण कर रहे हों तो उससे पहले ही उन्हें नष्ट कर दे।

३९. कृणुष्व पाजः प्रसितिं न पृथ्वीं याहि राजेवामवाँ इभेन। तृष्वीमनु प्रसितिं द्रूणानोऽस्तासि विध्य रक्षसस्तपिष्ठैः॥ –ऋ० ४।४।१

तू दुष्टों को पकड़ने के लिए दुष्टों की सेना के पीछे-पीछे अपनी प्रकृष्ट सेना (=प्रसिति) लगा दे और अपने गरम से गरम शस्त्रों से राक्षसों को मार।

४०. प्रति स्पशो विसृज तूर्णितमो भवा पायुर्विशो अस्या अदब्धः। यो नो दूरे अघशंसो यो अन्त्यग्ने माकिष्टे व्यथिरा दधर्षीत्॥ –ऋ० ४।४।३

इस प्रजा का अदम्य रक्षक बनने के लिए चारों ओर गुप्तचरों को छोड़ जो पापकर्मा, प्रजा का बुरा चाहनेवाला (=अघशंस) दूर भाग रहा हो अथवा समीप छिप गया हो, ऐसा कोई भी प्रजा को व्यथा पहुँचानेवाला (=व्यथि) तुझे परास्त न कर सके, तेरे सामने किसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकार ताव न ला सके।

४१. उदग्ने तिष्ठ प्रत्या तनुष्व न्यमित्राँ ओषतात् तिग्महेते। यो नो अरातिं समिधान चक्रे नीचा तं धक्ष्यतसं न शुष्कम्॥ –ऋ० ४।४।४

तेरे पैने शस्त्र अमित्रों को भस्म कर दें। शत्रुओं के विरुद्ध शक्ति का ताना तान। जो कोई प्रजा को यह सिखाता हो कि—'राजा को अपना देय मत दो', इस प्रकार के अरातियों को सूखे तृण के समान नीचे पटक कर फूँक दे, ऊँचा बना रह।

४२. ऊर्ध्वो भव प्रति विध्याध्यस्मदाविष्कृणुष्व दैव्यान्यग्ने। अव स्थिरा तनुहि यातुजूनां जामिमजामिं प्र मृणीहि शत्रून्॥ –ऋ० ४।४।५

शत्रु एक मारे तो तू चार मार, अपनी दिव्यशक्ति का परिचय दे, चालबाजों की (=यातुजूनाम्) चेष्टाएँ जड़ीभूत कर दे, शत्रुओं को कुचल दे।

४३. अस्वप्नजस्तरणयः सुशेवा अतन्द्रासोऽवृका अश्रमिष्ठाः। ते पायवः सध्र्यञ्चो निषद्याऽग्ने तव नः पान्त्वमूर॥ –ऋ० ४।४।१२

पोलिस के सिपाही कैसे हों? कभी कर्त्तव्य में न सोनेवाले, आपत्तियों से तारनेवाले, उत्तम सुखदायक, तन्द्रा-रहित, अवृकाः—लोभ-रहित, कभी न थकनेवाले और सदा परस्पर सहयोग द्वारा चलनेवाले (=सध्र्यञ्चः) रक्षाकार्य में नियुक्त सेवक, तेरे सामने उपस्थित रहकर, सदा हमारी रक्षा करें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

४४. ये पायवो मामतेयं ते अग्ने पश्यन्तो अन्धं दुरितादरक्षन्। ररक्ष तान्त्सुकृतो विश्ववेदा दिप्सन्त इद् रिपवो नाह देभुः॥

—ऋ० ४।४।१३

ये बच्चों की ममता में अन्धे बेचारे गृहस्थी, भला तेरी सहायता के बिना क्या अपनी रक्षा कर सकते हैं? दुराचारी लोग तो इनकी सन्तान को दुरित मार्ग में ले जाने के लिए ताक में बैठे रहते हैं, परन्तु हे दण्डाध्यक्ष! तेरी कृपा से वे ठग लोग चाहते हुए भी उन्हें नहीं ठग सकते। तू जानता है कि नगर में कौन दुष्ट कहाँ छिपा है। तू उनसे नागरिकों की रक्षा करता है।

४५. त्वया वयं सधन्य स्त्वोतास्तव प्रणीत्यश्याम वाजान्। उभा शंस सूदय सत्यतातानृजुं च रुया कृणुह्यहयाण॥ —ऋ० ४।४।१४

हे सत्यताते! तू प्रकट और प्रच्छन्न दोनों प्रकार के ठगों को, अपने सत्य-पाश से नष्ट करता है। हम तेरी रक्षा में निश्शङ्क अन्न भोग रहे हैं।

४६. प्रवाच्यं वचसः किं मे अस्य गुहा हितमुप निणिग् वदन्ति। यदुस्त्रियाणामप वारिव व्रन् पाति प्रियं रुपो अग्रं पदं वेः॥ —ऋ० ४।५।८

वह गुप्त रहस्यों का पता लगाता है और जिस प्रकार प्यार से गाय का दूध निकाला जाता है, इस प्रकार वह रहस्य-दोहन करता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

४७. अनिरेण वचसा फल्गवेन प्रतीत्येन कृधुना-तृपासः। अधा ते अग्ने किमिहा वदन्त्यनायुधास आसता सचन्ताम्॥ –ऋ० ४।५।१४

झूठी निष्फल बात बोलनेवाले, सैंकड़ों झूठे प्रत्यय दें और कितनी ही शपथ खावें, तुझे तृप्त नहीं करते। तू उनका भण्डा फोड़ करके—उन्हें शस्त्रहीन करके ही छोड़ता है।

४८. भद्रा तें अग्ने स्वनीक संदृग् घोरस्य सतो विषुणस्य चारुः। न यत् ते शोचिस्तमसा वरन्त न ध्वस्मानस्तन्वी३ रेप आ धुः॥ –ऋ० ४।६।६

यद्यपि वह घोर है, फिर भी उसका दर्शन कल्याणकारी है—(=घोरस्य सतः भद्रा संदृक्) उसकी ज्योति को विध्वंसक लोग अपने अन्धकार से दबा नहीं सकते और संसार में पाप का आधान नहीं कर सकते।

४९. न यस्य सातुर्जनितोरवारि न मातरापितरा नू चिदिष्टौ। अधा मित्रो न सुधितः पावको३ऽग्निर्दीदाय मानुषीषु विक्षु॥ –ऋ० ४।६।७

तू इतना बेलिहाज है कि मानुषी प्रजा में माता-पिता तक तेरे दण्डदान को नहीं रोक सकते, अतः तू अपने न्याय से देदीप्यमान है।

५०. द्विर्यं पञ्च जीजनन्त्संवसानाः स्वसारो अग्निं मानुषीषु विक्षु। उषर्बुधमथर्यो३ न दन्तं शुक्रं स्वासं परशुं न तिग्मम्॥ –ऋ० ४।६।८

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुझे स्त्री-पुरुष दोनों प्रकार की पञ्चविध प्रजा ने, अर्थात् चार वर्ण तथा इर जनों ने मिलकर नियत किया है। तुझे उन्होंने मानो उसी प्रकार उत्पन्न किया है, जिस प्रकार शिशु-पालन-कुशल धात्री दाँत उत्पन्न करती है।

यहाँ बड़ी विलक्षण उपमा दी है। वस्तुतः दण्डाध्यक्ष का काम वही है, जो मुख में दाँत का है, अर्थात् काटना और चबाना तथा यथा-सम्भव हर पदार्थ को शरीरोपयोगी बनाना; नहीं तो छीलकर फेंक देना।

५१. आशुं दूतं विवस्वतो विश्वा यश्चर्षणीरभि।
आ जभ्रुः केतुमायवो भृगवाणं विशेविशे॥
—ऋ० ४।७।४

वह विवस्वान् का—राज्य शासन का दूत है तथा 'विशेविशे' प्रजा-प्रजा के लिए परिपाककारी अग्नि के समान है।

५२. वेरध्वरस्य दूत्यानि विद्वानुभे अन्ता रोदसी संचिकित्वान्। दूत ईयसे प्रदिव उराणो विदुष्टरो दिव आरोधनानि॥ —ऋ० ४।७।८

वह देवमार्ग के बाधक तत्त्वों को खूब जानता है तथा निरोधकों से अधिक विद्वान् है, इसीलिये वह उनका प्रतीकार करने में समर्थ है।

५३. कृष्णं त एम रुशतः पुरो भाश्चरिष्णवर्चिर्वपुषामिदेकम्। यदप्रवीता दधते ह गर्भं सद्यश्चिज्जातो भवसीदु दूतः॥ —ऋ० ४।७।९

वह शत्रुओं पर छिपकर आक्रमण करता है, उनके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तमोमय मार्गों को जानता है तथा अपने को छिपाने में वैसे ही कुशल है, जैसे—कुमारी गर्भ को।

५४. स विप्रश्चर्षणीनां शवसा मानुषाणाम्। अति क्षिप्रेव विध्यति॥ —ऋ० ४।८।८

वह तीव्रगामी अस्त्र के समान मानव-प्रजा को अपने बल से दबाकर रखता है।

५५. घृतं न पूतं तनूररेपाः शुचि हिरण्यम्। तत् ते रुक्मो न रोचत स्वधावः॥ —ऋ० ४।१०।६

यदि तेरी प्रजा के हर मनुष्य का शरीर पापरहित है और धन तपे घृत के समान पवित्र है, हे दण्डाध्यक्ष! यदि तेरे शासन में यह गुण है, तो यही तेरा स्वर्णाभूषण है, रुक्म है।

५६. यथा ह त्यद् वसवो गौर्यं चित् पदि षिताममुञ्चता यजत्राः। एवो ष्वस्मन्मुञ्चता व्यंहः प्र तार्यग्ने प्रतरं न आयुः॥ —ऋ० ४।१२।६

हमें पाप से छुड़ा, हमें पार उतार, हमें दीर्घ आयु दे, हमारे पैरों में पड़ी पाप की बेड़ियाँ, ऐसे काट, जैसे बँधी गाय के पैर के बन्धन।

५७. अयं यः सृञ्जये पुरो दैववाते समिध्यते। द्युमाँ अमित्रदम्भनः॥ —ऋ० ४।१५।४

देखो! सृञ्जय में (अर्थात् जहाँ दुष्टों के सब प्रकार के अभिसरण, उपसरण, संसरण आदि के मार्ग जीत लिये जाते हैं और दुष्टों की पूरी नाकाबन्दी कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दी जाती है, उस दण्डाध्यक्ष के सदन में) यह मानवसमाज के शत्रुओं को चकमा देनेवाला (=अमित्रदम्भन) दण्डाध्यक्ष, किस प्रकार प्रदीप्त किया जा रहा है! इस सृञ्जय अर्थात् दण्डाध्यक्ष-सदन में सदा दिव्य वायु बहती है, इसलिये इसका नाम देवता है।

५८. बोधद् यन्मा हरिभ्यां कुमारः साहदेव्यः। अच्छा न हूत उदरम्॥ –ऋ० ४।१५।७

अब वह अग्नि स्वयं बताता है कि मैं कैसे 'उदरम्'—उदित हुआ हूँ? मैं ऐसे उदित हुआ हूँ कि मानो प्रजा ने कहा कि—सामने आ। और मैं आ गया। कहाँ? समाचार और सामग्री को लानेवाले तथा ले जानेवाले हरणकर्त्ता 'हरि' लोगों के पास, 'सृञ्जय' अर्थात् दण्डाध्यक्ष के सदन में लोक-कल्याण के हृदय में, इस रक्षा-केन्द्र के रक्षकों के हृदय में 'साहदेव्य' कुमार ने मेरा इन सब हरियों से—उभयविध हरणकर्त्ताओं से परिचय करवाया और मैं इस प्रकार सबके समक्ष उपस्थित हो गया।

५९. हुवे वः सूनुं सहसो युवानं मद्रोघवाचं मतिभिर्यविष्ठम्। य इन्वति द्रविणानि प्रचेता विश्ववाराणि पुरुवारो अध्रुक्॥ –ऋ० ६।५।१

हे भाइयो! सहन-शक्ति के पुत्र, द्रोह-रहित वाणी बोलनेवाले और यविष्ठ, अर्थात् जोड़ मिलाने में निपुणतम युवा जननायक को तुम्हारे लिए बुलाकर लाता हूँ, जोकि विश्वहितैषी, सदा जागरूक (=प्रचेताः)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बहुजन-हितकारी (=विश्ववाराणि) धन देता है।

६०. स चित्र चित्रं चितयन्तमस्मे चित्रक्षत्र चित्रतमं वयोधाम्। चन्द्रं रयिं पुरुवीरं बृहन्तं चन्द्र चन्द्राभिर्गृणते युवस्व॥ -ऋ० ६।६।७

हे अग्ने! तू हमें, चेतना उत्पन्न करनेवाला, चेतन करनेवाला, चैतन्य-वर्धकतम, आयुवर्धक, आनन्ददायक और वीरबहुल धन प्राप्त करा। हे चित्रक्षत्र! हे चन्द्र! तेरी कृपा से हमारे धन-प्राप्ति के उपाय भी आनन्दवर्धक हों।

६१. मूर्धानं दिवो अरतिं पृथिव्या वैश्वानरमृत आ जातमग्निम्। कविं सम्राजमतिथिं जनानामासन्ना पात्रं जनयन्त देवाः॥ -ऋ० ६।७।१

इस विश्वभर के हितैषी (=वैश्वानरं), ज्ञान के उत्पन्न (=ऋत आजातं), कवि, लोक-हृदय-सम्राट्, परिव्राजक (=अतिथिं) तथा सब प्रकार के दान के पात्र अग्नि को संसार के विद्वानों ने मुख में (=आसन्) विद्यादान द्वारा उत्पन्न किया है। इसका शरीर योनिज है, परन्तु इसके वैश्वानरत्वादि गुण विद्वज्जनमुख-प्रादुर्भूत-दिव्योपदेशजन्य हैं।

६२. त्वद् विप्रो जायते वाज्यग्ने त्वद् वीरासो अभिमातिषाहः। वैश्वानर त्वमस्मासु धेहि वसूनि राजन्त्स्पृहयाय्याणि॥ -ऋ० ६।७।३

हे जनराजन्! ब्राह्मण भी तेरे शिष्य हैं और वीर क्षत्रिय भी। तू हमें सहयोगजन्य, स्पृहणीय धन देता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

६३. वैश्वानर तव तानि व्रतानि महान्यग्ने नकिरा दधर्ष। यज्जायमानः पित्रोरुपस्थेऽविन्दः केतुं वयुनेष्वह्नाम्॥ —ऋ० ६।७।५

हे वैश्वानर! विद्वानों ने तुझे विद्या के द्वारा मुख से जन्म दिया है। इस दिव्य जन्म के काल में तुझे ज्ञान का झण्डा दिया गया। इस झण्डे का सर्वत्र स्थापन करने के निमित्त तूने जो व्रत लिये हैं, उनसे तुझे कोई हर्गिज नहीं हटा सकता।

६४. वैश्वानरस्य विमितानि चक्षसा सानूनि दिवो अमृतस्य केतुना। तस्येदु विश्वा भुवनाधि मूर्धनि वया इव रुरुहुः सप्त विस्रुहः॥ —ऋ० ६।७।६

हे वैश्वानर! तूने अपने उपदेश से (=चक्षसा) ज्ञान के हर शिखर पर अमृत का झण्डा गाड़ दिया है, जिसे देखकर, पाँच प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द इन सात ज्ञान की चोटियों पर हर मनुष्य उस झण्डे को देखकर चढ़ता रहे।

६५. अपामुपस्थे महिषा अगृभ्णत विशो राजानमुप तस्थुरृग्मियम्॥ —ऋ० ६।८।४

जल के किनारे योगाभ्यासी महान् विद्वानों ने शिष्यरूप में ग्रहण कर उसे योग्य बनाया और प्रजाहितकारी वेदवक्ता शिष्य बनाकर वे प्रजा के सामने उपस्थित हुए कि यह तुम्हारा विचारशासक राजा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

६६. युगेयुगे विदथ्यं गृणद्भ्योऽग्ने रयिं यशसं धेहि नव्यसीम्। पव्येव राजन्नघशंसमजर नीचा नि वृश्च वनिनं न तेजसा॥ –ऋ० ६।८।५

हे वैश्वानर! तू हमें यशोवर्धक नवीन धन दे और अपने ज्ञानचक्र के पहियों से पापियों को कुचल दे, अर्थात् उनका अज्ञान दूर कर दे।

६७. अहश्च कृष्णमहरर्जुनं च वि वर्तेते रजसी वेद्याभिः। वैश्वानरो जायमानो न राजाऽवातिरज्ज्योतिषाग्निस्तमांसि॥ –ऋ० ६।९।१

उसके यहाँ काले-गोरे में, ज्ञानी-अज्ञानी में कलह नहीं है। वह कहता है—'काले गोरे पर क्यों लड़ते हो? भगवान् ने २४ घण्टे का दिन बताया है। उसका आधा भाग काला और आधा भाग गोरा है।' यदि तुम अज्ञानियों अथवा धनहीनों को काले कहते हो तो, हे लोगो! यह ज्ञान की अथवा ऐश्वर्य की सम्पत्ति दिन-रात के समान परिवर्त्तनशील है। जिसे तुम आज ज्ञानहीन अथवा धनहीन, अतएव काला समझते हो, वे सर्वदा वैसे ही रहनेवाले नहीं हैं। सम्भव है कल आलस्य और प्रमाद तुम्हें काला बना दे और जिन्हें कपड़ा पहनना भी नहीं आता वे ही जंगली ज्ञान-सम्पन्न अथवा धन-सम्पन्न होकर तुमसे घृणा करने लगें, इसलिये जो ज्ञानहीन या धनहीन हैं, उनका अज्ञान अथवा दारिद्र्यरूप-अन्धकार तुम अपनी ज्योति से दूर कर दो। **वैश्वानर** ने अपने जन्म-दिन से (=स्नातक अथवा संन्यासी बनने के दिन से) यही काम किया है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'तदु वा आहुः काममेव चरेत् द्वय्यो वा इमाः प्रजा दैव्यश्च मानुष्यश्च मानुष्यः प्रजाः प्रजननात् प्रजायन्ते। छन्दांसि वै दैव्यः प्रजाः, तानि मुखतो जनयते तत एतं जनयते तस्मादु काममेव चरेत्।'

—शत० ११.५.४.१७

६८. स इत् तन्तुं स वि जानात्योतुम्.....य ईं चिकेतदमृतस्य गोपाः.....॥ —ऋ० ६।९।३

वैश्वानर ही दिव्यवस्त्र बुन सकता है, क्योंकि उसके पास ज्ञान का अमृतमय भण्डार भरा हुआ है।

६९. पीपाय स श्रवसा मर्त्येषु यो अग्नये ददाश विप्र उक्थैः। चित्राभिस्तमूतिभिश्चित्रशोचिर्व्रजस्य साता गोमती दधाति॥ —ऋ० ६।१०।३

साधारण जननायक अग्नि, उस उपदेश से आप्यायित होकर हमें, व्रज (=चरागाह) और गौएँ देता है।

७०. आ यः पप्रौ जायमान उर्वी दूरेदृशा भासा कृष्णाध्वा॥ —ऋ० ६।१०।४

जहाँ अन्धकार है, वही उसका रास्ता है। उसकी भास्=रोशनी दूर से दिखाई देती है, लोग उसकी ओर खिंचते हैं।

७१. नू नश्चित्रं पुरुवाजाभिरूती अग्ने रयिं मघवद्भ्यश्च धेहि। ये राधसा श्रवसा चात्यन्यान्त्सुवीर्येभिश्चाभि सन्ति जनान्॥

—ऋ० ६।१०।५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हे अग्ने! जो प्रभु-आराधना से अथवा दान द्वारा लोकाराधना से (=राधसा) और यश तथा शास्त्र-श्रवण से (=श्रवसा) औरों की अपेक्षा आगे बढ़ते हुए हैं, परन्तु जनमात्र के सामने यह राधस् और श्रवस् लेकर उपस्थित रहते हैं, उन भाग्यशालियों को (=मघवद्भ्यः) तथा हम साधारण जनों को तू धन दे।

७२. यस्ते॑ सूनो सहसो गी॒र्भिरु॒क्थैर्य॒ज्ञैर्म॑र्तो॒ निशि॑तिं वे॒द्यान॑ट्। विश्वं॑ स दे॑व॒ प्रति॒ वार॑मग्ने ध॒त्ते धा॒न्यं॑ पत्य॑ते वस॒व्यैः॥ —ऋ० ६।१३।४

यहाँ फिर सहन-शक्ति के पुत्र से कहा है—'जो मनुष्य तेरी शक्ति को पैना करता है, वह धान्यसमृद्ध होता है और धनगम्य वैभव उस पर टूटकर पड़ता है।'

७३. नाना॒ ह्य॑ग्नेऽव॑से स्पर्ध॑न्ते रायो॑ अ॒र्यः। तूव॑न्तो॒ दस्यु॑मा॒यवो॑ व्र॒तैः सीक्ष॑न्तो अव्र॒तम्॥ —ऋ० ६।१४।३

हे जननायक! तेरी आज्ञा पाकर नाना प्रकार के धन (=रायः) तेरी प्रजा (=अर्यः) बनकर स्पर्धा करते हैं कि किसे क्या आज्ञा मिलती है। तब उस धन से तेरे प्रगतिशील भक्त (=आयवः) दस्युओं का वध करते हैं, सो कैसे कि व्रतहीन को व्रत की शिक्षा देते हैं अथवा व्रतपालन-शक्ति से व्रतहीनों को व्रतयुक्त बनाकर, उनके आक्रमण को सहन करने की इच्छा करते हैं।

७४. अ॒ग्निर्हि वि॒द्मना॑ नि॒दो दे॒वो मर्त॑मुरु॒ष्यति॑। सहा॒वा॒ यस्यावृ॑तो र॒यिर्वाजे॒ष्ववृ॑तः॥ —ऋ० ६।१४।५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो तेरा भक्त है, उसका धन उसे सहनशील बनाता है। उसने जिस धन का वरण किया है, उसका युद्ध में कोई निवारण नहीं कर सकता।

७५. स त्वं दक्षस्यावृको वृधो भूरर्यः परस्यान्तरस्य तरुषः। रायः सूनो सहसो मर्त्येष्वा छर्दिर्यच्छ वीतहव्याय सप्रथो भरद्वाजाय सप्रथः॥

—ऋ० ६।१५।३

हे अग्ने! तू संसार को वीर्य की (=दक्षस्य) वृद्धि निष्कपट भाव से सिखाता है। तू पराई प्रजाओं के भी अन्तःकरण में तरणशीलता उत्पन्न करता है। तू हमें धन दे।

७६. देवासश्च मर्तासश्च जागृविम्॥
विभूषन्नग्न उभयाँ अनु व्रता॥

—ऋ० ६।१५।८-९

जो मेधावी कवि हैं जिनके कि व्रत का वह अनुगामी है तथा जो उसके अनुव्रत हैं, दोनों का वह आभूषण है, अर्थात् अपने बड़े देवों का तथा अपने अनुगामी साधारण मनुष्यों का वह सुशोभयिता।

७७. वस्वीं ते अग्ने संदृष्टिरिषयते मर्त्याय।
ऊर्जो नपादमृतस्य॥ —ऋ० ६।१६।२५

इस मण्डल में अग्नि की दृष्टि 'वस्वी'=धरती को बसानेवाली है—सुशिक्षित वसु (पूर्णतया विकसित राजनीतिक चेतना-सम्पन्न नागरिक) बनानेवाली है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

७८. भरद्वाजाय सप्रथः शर्म यच्छ सहन्त्य।
अग्ने वरेण्यं वसु॥ —ऋ० ६।१६।३३

जो मन भूखी प्रजा के लिए अन्नादि सामग्री पहुँचाने की चिन्ता करे तथा उपाय ढूँढ निकाले, उसका नाम **'भरद्वाज'** है (शत० ८.१.१.९)। यह जननायक ऐसे ऋषियों का श्रद्धापूर्वक संग्रह करता है। यह उनके उपदेश तथा आदेश सहन करने में **'सहन्त्य'** है=निपुण है।

७९. दश रथान् प्रष्टिमतः शतं गा अथर्वभ्यः।
अश्वथः पायवेऽदात्॥ —ऋ० ६।४७।२४

फिर जो जितेन्द्रिय होकर सच्चे अर्थों में **'अश्वथ'** (=अश्ववान्) हो जाता है, वह उपदेश द्वारा तो सत्पात्रों को ज्ञानकोश देता ही है, परन्तु यदि अविचल भक्तिवाले **अन्तेवासी** (=**अथर्व**) बनकर १० शिष्य गुरु के पास आ जावें तो वह उन्हें दूसरों को उपदेश देना भी सिखाता है और हर ब्रह्मचर्य के नियमपालक (=**पायवे**) को इस प्रकार के उन दश शिष्यों को तिपाईवाले १० शरीर, अर्थात् **युक्त आहार, युक्त निद्रा** और **युक्त ब्रह्मचर्य** इन तीन स्तम्भोंवाले १० शरीर देता है तथा १० दुर्दान्त घोड़ों के समान ये जो इन्द्रियाँ हैं, उनको **'गाय'** बनाकर, अर्थात् विनीत बनाकर देता है। इस प्रकार १०/१०=१०० गौएँ देता है।

८०. महि राधो विश्वजन्यं दधानान् भरद्वाजान्त्
सार्ञ्जयो अभ्ययष्ट॥ —ऋ० ६।४७।२५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस प्रकार चारों ओर फैलनेवाली इन्द्रियों को जीतनेवाला इन्द्रिय-जय का पुत्र, स्वराज्यवाला, आत्मज्ञानी ज्ञानपात्रभूत परम-रण-तत्पर मनों को ऋत्विज् बनाकर जितेन्द्रियत्व-प्रचाररूप यज्ञ सदा करता आया है और वे मन भी प्रभुभक्ति-भरे, विश्वकल्याणकारी, प्रभुप्रेमरूपी धन को पाकर निहाल हो जाते हैं। ऐसे पुरुष ही संसार में सहनशक्ति उत्पन्न करके सब राष्ट्रों को एक राष्ट्र बनाने में समर्थ होते हैं।

८१. वनस्पते वीड्वङ्गो हि भूया अस्मत्सखा प्रतरणः सुवीरः। गोभिः सन्नद्धो असि वीळयस्वाऽऽ स्थाता ते जयतु जेत्वानि॥ —ऋ० ६।४७।२६

ऐसे पुरुषों को तपोवनों में आश्रम बनाने चाहियें। उन तपोवनों के अध्यक्ष (=वनस्पति) ही विश्व की एकता उत्पन्न करने की इच्छावाले नेताओं के सच्चे सखा हैं। वही धरती को तारनेवाले सच्चे वीर हैं। नेताओं को चाहिये कि उन्हें सब प्रकार की गौओं से (वाणी, पशु, भूमि आदि से) सन्नद्ध कर दें।

८२. दिवस्पृथिव्याः पर्योज उद्भृतं वनस्पतिभ्यः पर्याभृतं सहः। अपामोज्मानं परि गोभिरावृतमिन्द्रस्य वज्रं हविषा रथं यज॥

—ऋ० ६।४७।२७

वे सच्चे तपस्वी ही आसमान से तेज, धरती से सहनशक्ति और जङ्गल से शीतोष्णादि-द्वन्द्व-सहनशक्ति आदि गुण खींचकर अपने जीवन में ढालते हैं। (मूर्ख

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोग इनसे जड़ता सीखते हैं)। वे तपोवन ही रथ हैं जिन पर चढ़कर, जिनमें समारूढ़ होकर—सच्चा नेता विजययात्रा के लिए निकलता है।

८३. इन्द्रस्य वज्रो मरुतामनीकं मित्रस्य गर्भो वरुणस्य नाभिः। सेमां नो हव्यदातिं जुषाणो देव रथ प्रति हव्या गृभाय॥ —ऋ० ६।४७।२८

यह इन्द्र का वज्र है, सैनिकों की छावनी है, मित्र (ब्राह्मण) का गर्भ है तथा वरुण (क्षत्रिय) के लिए केन्द्र के बन्धन में शासनबद्ध होकर चलना सिखाने का केन्द्र है। हे तपोवन-रूप दिव्यरथ! हमारी भेंट स्वीकार कर।

८४. उप श्वासय पृथिवीमुत द्यां पुरुत्रा ते मनुतां विष्ठितं जगत्। स दुन्दुभे सजूरिन्द्रेण देवैर्दूराद् दवीयो अप सेध शत्रून्॥ —ऋ० ६।४७।२९

यहाँ से जो स्नातक तैयार होते हैं, वे सच्चे नेता का विजय-घोष करनेवाले नगाड़े हैं। उनकी आवाज से ही दुष्ट भाग खड़े होते हैं और सज्जन आश्वस्त होते हैं।

८५. आमूरज प्रत्यावर्त्तयेमाः के तुमद् दुन्दुभिर्वावदीति। समश्वपर्णाश्चरन्ति नो नरोऽस्माकमिन्द्र रथिनो जयन्तु॥ —ऋ० ६।४७।३१

हे इन्द्र! इन दुन्दुभि-रूप स्नातकों से, विषय-रूप शत्रुओं के चङ्गुल में फँसी प्रजा-रूप गौओं को छुड़ाकर वापस ला। ये स्नातक झण्डा लिये दुन्दुभि के समान नाद करते हैं। इनके बल से हमारे योद्धा यह अनुभव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करते हैं कि 'मानो हमें पङ्गु लग गए हैं'। हमारे रथी इस प्रकार दिग्विजय करें।

यज्ञायज्ञा वो अग्नये गिरागिरा च दक्षसे। प्र प्र वयममृतं जातवेदसं प्रियं मित्रं न शंसिषम्॥

—ऋ० ६।४८।१

जो जननायक इन्द्र को=राजा को यहाँ तक लाया है, उसका **सभा-सभा** में **वाणी-वाणी** से यशोगान होता है। उसे सब अपना प्रिय मित्र-सा जानकर उसकी प्रशंसा करते हैं (चाहे वह उन्हें जानता भी न हो)।

८६. **'अग्ने हेळांसि दैव्या युयोधि नोऽदेवानि ह्वरांसि च'॥** —ऋ० ६।४८।१०

तू विद्वानों के कोप तथा दुष्टों की कुटिलता इन दोनों से हमें बचा।

८७. **या शर्धाय मारुताय स्वर्भानवे श्रवोऽमृत्यु धुक्षत। या मृळीके मरुतां तुराणां या सुम्नैरवयावरी॥**

—ऋ० ६।४८।१२

विश्व के सैन्यवर्ग को विश्वयुद्ध बन्द करके सुख से निहाल कर देनेवाली, आगे ही आगे बढ़नेवाली, उन्हें हत्या के काम से छुड़ाकर प्रजा-सुखकारी कामों के लिए मरना-जीना सिखानेवाली, मृत्युरहित यश दिलानेवाली (अब तक सैनिकों का यश मौत से बन्धा था), विश्व की कामनापूर्ति करनेवाली (=**विश्वदोहस्**) और विश्वभर को भोजन देनेवाली उस विश्व की एकता-रूप धेनु का दूध, विश्वभर के लोकहितकारी मनों के लिये दोहन करो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

८८. मा काकम्बीरमुद् वृहो वनस्पतिमशस्तीर्वि हि नीनशः। मोत सूरो अह एवा चन ग्रीवा आदधते वेः॥ —ऋ० ६।४८।१७

इस दुग्धभरी गाय को, तुम्हें एकता-प्रचार द्वारा हाँककर मानव-प्रजारूप बछड़े के साथ जोड़ना होगा, सो यह काम करो। अरे वृक्षों को तो देखो, वे कौवे तक को शरण देते हैं और तुम मनुष्य होकर मनुष्य से लड़ते हो। इस पवित्र एकता को नष्ट न होने दो।

८९. 'दूतेरिव तेऽवृकमस्तु सख्यम्'॥ —ऋ० ६।४८।१८

हे विश्वकोश-निर्माता पूषन्! जिस प्रकार छिद्र होने से चरसे का जल खेतों को नहीं मिलता, मार्ग में नष्ट हो जाता है। इसी प्रकार भ्रष्टाचारी अधिकारियों के कारण तेरा पोषक धन उसकी पात्र प्रजा तक नहीं पहुँच पाता है, इसलिये प्रजा का धन चुरानेवाले भेड़ियों से हमें बचा। तेरी हमारी मैत्री लोभरहित (अवृकम्) हो।

९०. सकृद्ध द्यौरजायत सकृद् भूमिरजायत। पृश्न्या दुग्धं सकृत् पयस्तदन्यो नानु जायते॥ —ऋ० ६।४८।२२

यह आकाश, यह धरती, भगवान् ने अखण्ड-रूप में एक बार उत्पन्न कर दी। हम मूर्ख हैं जो धरती और आकाश के पहिले टुकड़े करके फिर उन्हें मिलाने का यत्न कर रहे हैं। बस, एक बार मिलकर इसे एक कर डालो, फिर दूसरी बार भूमि हो, भूमि-खण्ड न हों।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

९१. स्तुषे जनं सुव्रतं नव्यसीभिर्गीर्भिर्मित्रावरुणा सुम्नयन्ता। त आ गमन्तु त इह श्रुवन्तु सुक्षत्रासो वरुणो मित्रो अग्निः॥ –ऋ० ६।४९।१

केवल **अग्नि, पूषा** और **मरुत** ही नहीं, अपितु सब देवों को इस यज्ञ में भाग लेना होगा। यह जो एकता का पवित्र व्रत धारण किये हुए नवीन मानव-जन बन रहा है, मैं इसका स्तोत्रगान करता हूँ। हे वरुण! हे मित्र! हे अग्ने! तुम भी नये उत्साह भरे शब्दों से इस जनता का उत्साह बढ़ाने के लिये इनके पास आओ और इनको सदुपदेश दो। क्या तुम '**सुक्षत्र**' नहीं हो?

९२. विशोविश ईड्यमध्वरेष्वदृप्तक्रतुमरतिं युवत्योः। दिवः शिशुं सहसः सूनुमग्निं यज्ञस्य केतुमरुषं यजध्यै॥ –ऋ० ६।४९।२

एक **एकता** उत्पन्न करनेवाला **जननायक** विश्व की **प्रजा-प्रजा** का पूज्य हो गया है। **यज्ञ-यज्ञ** में इसकी पूजा होती है। फिर भी देखो, इसका कोई कार्य दर्पोन्मत्त नहीं होता। निन्दा और स्तुतिरूप दोनों युवतियों में इसकी कोई रति नहीं है, इसीलिये '**अदृप्तक्रतु**' है। (सारा संसार बूढ़ा हो जाय, पर निन्दा और स्तुति सदा जवान रहती हैं, इसलिये ये युवतियाँ कही गई हैं)। यह द्यौः का शिशु तथा सहन-गुण का बेटा है। जिस प्रकार आकाश एक है, उसी प्रकार की एकरूपता वह मानवजाति में, लाने में तत्पर है। वह इस विशाल सङ्गठन का गुलाबी झण्डा है, अर्थात् उषा के समान उत्साहभरा रंग सब में भरता है (अथवा रोषहीन है)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

९३. अरुषस्य दुहितरा विरूपे स्तृभिरन्या पिपिशे सूरो अन्या। मिथस्तुरा विचरन्ती पावके मन्म श्रुतं नक्षत ऋच्यमाने॥ –ऋ० ६।४९।३

यह संसार की रंगबिरंगी प्रजा से कहता है कि—'देखो मूर्खो! लाल रंग के सूर्य की **रात्रि-श्री** और **दिन-श्री** दो पुत्रियाँ हैं। एक **काली** और एक **गोरी**। पर पिता दोनों का **अरुण** है, **गुलाबी** है। उनमें से एक (रात्रि) नक्षत्रों से शोभायमान है और एक को (दिन को) सूर्य अपना वस्त्र पहिनाता है; अतः वह (दिन-श्री) गोरी है, पर दोनों मिलकर किस प्रकार **संवत्सररूप** वस्त्र बुनती हुईं अपने-अपने काम में व्यस्त विचर रही हैं। ये दोनों पवित्र लोकपावन प्रेम का उपदेश कर रही हैं।' जब मननपूर्वक इनकी स्तुति करते हैं, तो लोग कहते हैं—'**हमारी सुनो, कुछ सन्देश दो।**' अरे मूर्खो! वे तो पवित्र प्रेम का सन्देश नित्थ देती हैं। भगवान् से प्रार्थना किया करो कि उस सुने हुए सन्देश पर हम मनन भी करें।

९४. प्र वायुमच्छा बृहती मनीषा बृहद्रयिं विश्ववारं रथप्राम्। द्युतद्यामा नियुतः पत्यमानः कविः कविमियक्षसि प्रयज्यो॥ –ऋ० ६।४९।४

अरे, अपनी बुद्धि को वायु देवता की ओर पहुँचाओ, वह भी यही एकता का सन्देश दे रहा है। वहाँ से भी—उस **मनीषी** से भी—तुम्हें यही **मनीषा** मिलती है। वह **गन्धवह** है। फूलों की सुगन्ध अपने पास दबाकर नहीं रखता है। बिना किसी भेदभाव के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने उस विश्वकल्याणकारी, रथ भर देनेवाले सुगन्धरूप धन को वह उठाये फिरता है (**बृहत्-बृहू उद्यमने**) और तुम्हारे रथ उससे भर देता है। कभी तुमने उससे कहा है कि—'हे वायो! तू धन्य है, तेरा सारा यान, दान की स्तुति से द्योतमान है। तू सर्वस्वदानी है। तू **नियुतों** का, **काफिलों** का स्वामी है', पर हे यज्ञकुशल! उत्तम दानरूप करनेवाले, तू हर विचारशील को अपनी इस मूक कविता से, यज्ञ-विद्या से पूजित करता है।

९५. परिष्कृतास इन्दवो योषेव पित्र्यावती।
वायुं सोमा असृक्षत॥ (२य मन्त्र)

एक आध नहीं, आपके द्वारा परिष्कृत सब ही स्नातक ऐसी हवा बहावें कि सर्वत्र उनका सौरभ फैल रहा हो और आप भी यह समझें कि यह मेरा स्नातक विद्या तथा चरित्र के अलंकृत पुरुष नहीं, अपितु मानो विद्याव्रतालंकृता कन्या पितृकुल से पतिकुल में जा रही है। गुरुकुल की लाज इसके हाथ में है।

९६. अया सोमः सुकृत्यया महश्चिदभ्यवर्धत
मन्दान उद् वृषायते॥ (१म मन्त्र)

हे आचार्य! सुनो, इस प्रकार के उत्तम स्नातक उत्पन्न करने रूप सुकृत्या से ही आचार्य की महिमा बढ़ती है और वह फूला नहीं समाता। उभर-उभर आता है।

९७. कृतानीदस्य कर्त्वा चेतन्ते दस्युतर्हणा।
ऋणा च धृष्णुश्चयते॥ (२य मन्त्र)

लोग उसके कृत और कर्त्तव्य दोनों प्रकार के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दस्युनाशक कर्मों की सर्वत्र चर्चा करते हैं, परन्तु वह केवल पिछली कमाई पर नहीं जीता, हर वर्ष नये-से-नये स्नातक उत्पन्न करके जनता पर ऋणों का पहाड़ चिनता जाता है, इसीलिये स्नातकों को ४६.१ में **'पर्वतावृधः'** कहा गया है।

९८. आत् सोम इन्द्रियो रसो वज्रः सहस्रसा भुवत्।
उक्थं यदस्य जायते॥ (३य मन्त्र)

इस आचार्य का जो **उक्थम्** अर्थात् **वचन** उत्पन्न होता है, वह दुष्टों के लिये **वज्र** और भक्तों के लिये **सहस्रों** का दाता है।

९९. तं त्वा नृम्णानि बिभ्रतं·····चारुं सुकृत्ययेमहे॥
(७म मन्त्र)

हे आचार्य! महान् देवलोक के (=**विद्वत्सभा के**) सभामञ्च पर बैठे हुए, हमारे लिये ऐसे योग्य विद्वद्रत्न भेंट करने वाले, सुकृत्यावान् और चारुचरित्र-चर्चित आपके सम्मान के लिये हम भी **सुकृत्या** ही भेंट करते हैं।

१००. तया पवस्व धारया यथा गाव इहागमन्।
जन्यास उप नो गृहम्॥ (२य मन्त्र)

हे आचार्य! अपनी उस पवित्र ज्ञानधारा का प्रवाह भी बहाइये जिसने **नाना शास्त्रपारङ्गत** (=**गावः**) और **वीर पुत्रों को जन्म देने में समर्थ** (=**जन्यासः**) **कन्याएँ** वधू होकर हमारे घरों में आवें।

इति आग्नेय शतकम्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन्त्रानुक्रमणिका

मन्त्रांश	मं०सं०	मन्त्रांश	मं०सं०
अकर्म ते स्वपसो	३५	आमूरज प्रत्यावर्त्तयेमाः	८५
अग्निर्द्यावापृथिवी	१३	आ यः पप्रौ जार्यमान	७०
अग्निरस्मि जन्मना	१५	आशुं दूतं विवस्वतो	५१
अग्निना रयिम०	१	इन्द्रस्य वज्रो मरुता०	८३
अग्निर्हि विद्मना	७४	ईयिवांसमति स्रिधः	४
अग्ने हेळांसि	८६	उदग्ने तिष्ठ प्रत्या	४१
अग्ने दिवो	१०	उप श्वासय पृथिवी०	८४
अग्ने सहस्व	१२	ऊर्ध्वो भव प्रति	४२
अच्छा वोचेय	२६	ऋतेन ऋतं नियत०	३६
अतस्त्वं दृश्याँ	३०	कृणुष्व पाजः प्रसितिं	३९
अधा ह यद्	३१	कृतानीदस्य कर्त्वा	९७
अधा मातुरुषसः	३२	कृष्णं त एम रुशतः	५३
अधा यथा नः	३३	घृतं न पूतं तनूररेपाः	५५
अनिरेण वचसा	४७	चित्तिमचित्तिं चिन०	२९
अपामुपस्थे महिषा	६५	तनूनपादुच्यते गर्भ	१७
अयं यः सृञ्जये	५७	तया पवस्व	१००
अयं सो अग्नि०	९	तरणिर्विश्वदर्शतो	३
अया सोमः	९६	ते मर्मृजत दद्रुवांसो	२४
अरुषस्य दुहितरा	९३	तं त्वा नृम्णानि	९९
अस्वप्नजस्तरणयः	४३	तं त्वा विप्रा	५
अहश्च कृष्ण०	६७	त्वां ह्यग्ने सदमित्	२०
अलातृणो वल	१८	त्वया वयं सधन्य०	४५
आत् सोम इन्द्रियो	९८	त्वद् विप्रो जायते	६२
आदित्पश्चा बुबुधाना	२५	त्रिरस्य ता परमा	२२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन्त्रांश	मं०सं०	मन्त्रांश	मं०सं०
दश॒ रथा॒न् प्रष्टि॑मतः	७९	यथा॑ ह॒ त्यद् व॑सवो	५६
दी॒दि॒वांस॒मपू॑र्व्यं	६	यस्य॒ त्वम॑ग्ने अध्व॒रं	२८
द्वि॒र्यं पञ्च॒ जी॒जन॑०	५०	यस्तुभ्य॑मग्ने अ॒मृता॑य॒	२७
दि॒वस्पृथि॒व्याः पर्योज॒	८२	ये पा॒यवो॑ मामते॒यं	४४
दे॒वास॑श्च मर्ता॑सश्च॒	७६	या नः॑ पीप॑रदश्वि॒ना	२
दृ॒तेरि॑व तेऽवृ॒कम॑स्तु	८९	या शर्धा॑य॒ मारु॑ताय॒	८७
न यस्य॒ सातु॒र्जनि॑०	४९	युगे॑युगे विद॒थ्यं॑	६६
नि त्वा॑ दधे॒ वर॑	११	वन॑स्पते वी॒ड्व॑ङ्गो	८१
नाना॒ ह्यग्नेऽह॑सं	७३	वस्वी॑ ते अग्ने	७७
नू नश्चि॒त्र पु॑रुवाजा॑०	७१	वै॒र॒ख्व॒स्य॑ दू॒त्यानि	५२
परि॑ष्कृतास॒ इन्दवो॒	९५	वैश्वा॒नरं॑ मनसाग्निं	१४
पी॒पाय॒ स श्र॑वसा	६९	वैश्वा॑नर॒ तत्र॒ तानि॑	६३
प्रति॒ स्पशो॒ वि सृ॑ज॒	४०	वैश्वा॒नर॒स्य॒ विमि॑०	६४
प्र॒वाच्यं॑ वचसः	४८	विशो॑विश॒ ईड्य॑०	९२
प्र वा॒युमच्छा॑ बृह॒ती	९४	श॒तधा॑र॒मुत्स॒मक्षी॑य॑०	१६
प्र शर्धा॑ आर्त॒ प्रथ॑सा	२३	स इत् तन्तुं॑ स वि	६८
बोध॒द् यन्मा॒ हरि॑भ्या॒	५८	स॒कृद्ध॒ द्यौरजायत	९०
भ॒द्रा ते॑ अग्ने	४८	स चि॒त्र चि॒त्रं चि॒त॑०	६०
भ॒रद्वा॑जाय॒ सप्र॑थः	७८	स त्वं दक्ष॑स्यावृको	७५
भवा॑ नो अग्ने सु॒मना॑	८	स भ्रात॑रं॒ वरु॑णमग्न॒	२१
महि॒ ज्योति॒र्निहि॑तं	१९	स्तुषे जनं॑ सु॒व्र॒तं	९१
महि॒ राधो॑ वि॒श्व॑०	८०	सु॒कर्मा॑णः सुरु॒चो॑	३४
मू॒र्धानं॑ दि॒वो अ॑र॒तिं॑	६१	स विप्र॑श्चर्षणी॒नां	५४
		रक्षा॑ णो अग्ने तव॒	३८
		हु॒वे वः॑ सू॒नुं सह॑सो	५९

R 14.2,SAM-A
122807
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

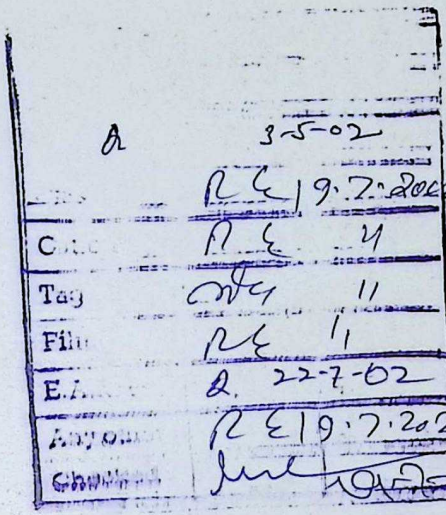

122807

ARCHIVES DATA BASE

Recommended By.....

Entered in Database

Signature with Date

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

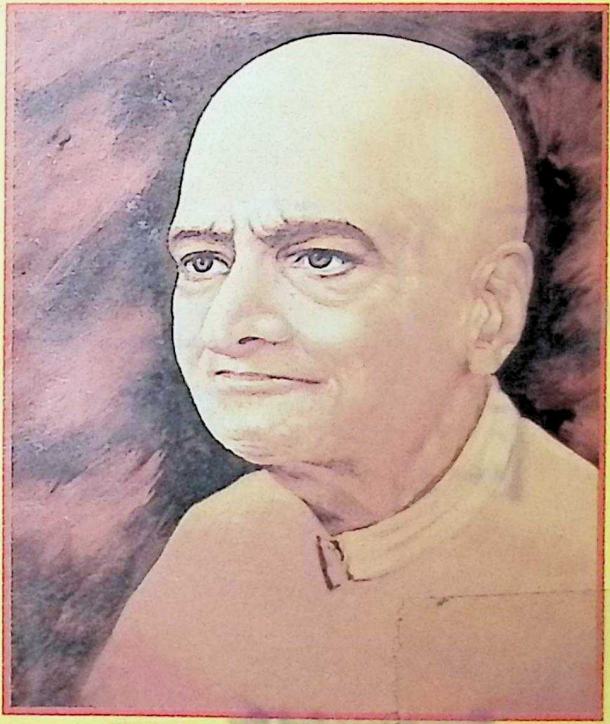

स्वामी समर्पणानन्द सरस्वती

(विद्यामार्तण्ड पं० बुद्धदेव विद्यालङ्कार)

यत्ते अग्ने तेजस् तेनाहं तेजस्वी भूयासम्
यत्ते अग्ने वर्चस् तेनाहं वर्चस्वी भूयासम्
यत्ते अग्ने हरस् तेनाहं हरस्वी भूयासम् ॥

यथा त्वमग्ने यज्ञस्य विधिपा असि
एवमहं वेदस्य निधिपो भूयासम् ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar